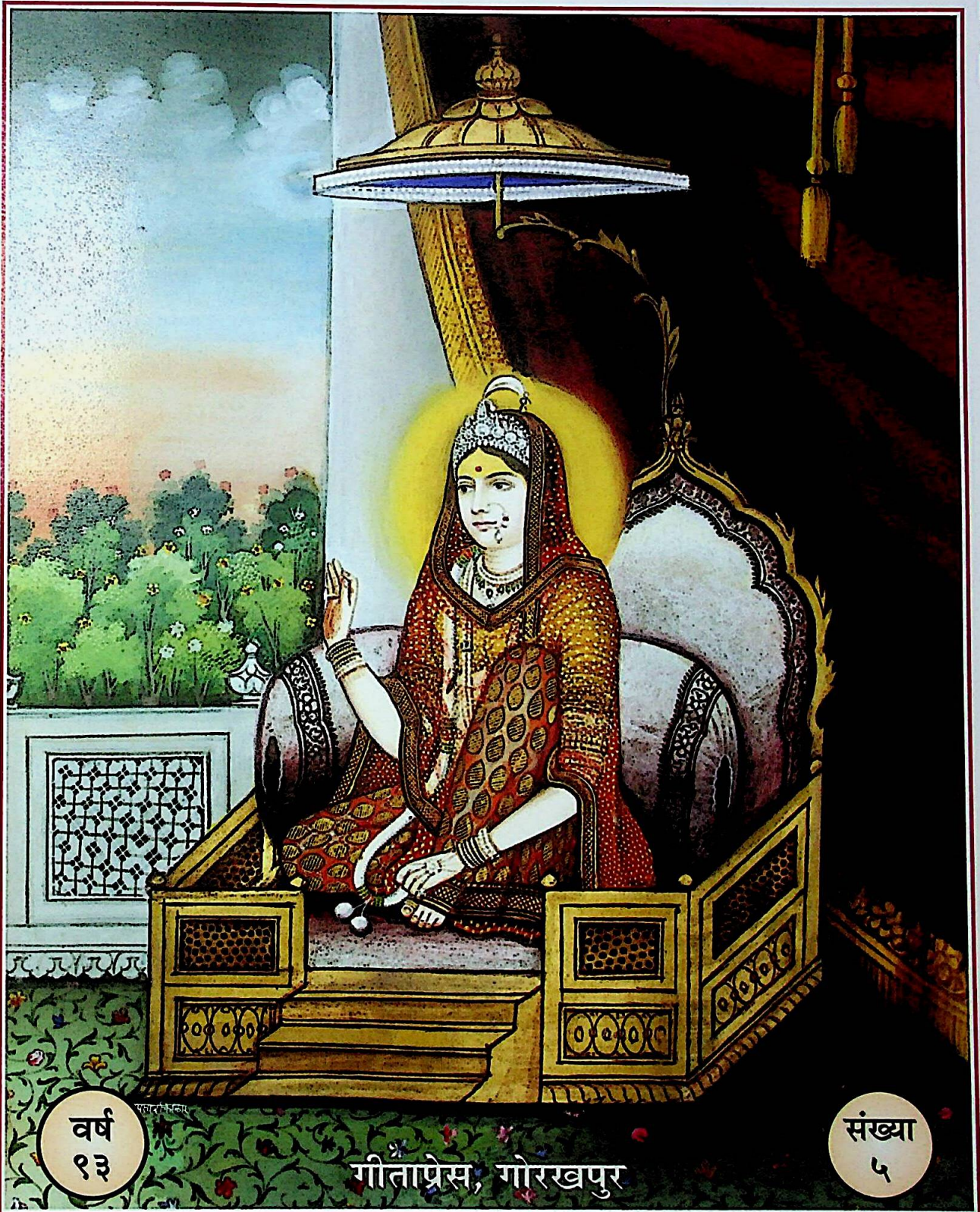


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९३

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
५

भगवती श्रीसीताजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

यजापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

वर्ष

१३

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मई २०१९ ई०

संख्या

५

पूर्ण संख्या १११०

श्रीबदरीनाथ-स्तुति

पवन मंद सुगंध शीतल, हेममन्दिर शोभितम् । निकट गंगा बहत निर्मल, श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥
शेष सुमिरन करत निशिदिन ध्यान धरत महेश्वरम् । श्री वेद ब्रह्मा करत स्तुति श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥
इन्द्र चन्द्र कुबेर दिनकर, धूप दीप निवेदितम् । सिद्ध मुनिजन करत जय जय, श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥
शक्ति गौरि गणेश शारद, नारद मुनि उच्चारणम् । योग ध्यान अपार लीला, श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥
यक्ष किन्नर करत कौतुक, गान गन्धर्व प्रकाशितम् । श्रीभूमि लक्ष्मी चँवर डोलैं, श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥
कैलासमें एक देव निरंजन, शैल-शिखर महेश्वरम् । राजा युधिष्ठिर करत स्तुति, श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ॥

श्रीबदरीनाथ (जी) की परमस्तुति यह पढ़त पाप विनाशनम् ।
कोटि-तीर्थ सुपुण्य सुन्दर सहज अति फलदायकम् ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मई २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीबदरीनाथ-स्तुति.....	३	१४- अपने प्रति न्याय करो (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज).....	१९
२- कल्याण.....	५	१५- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार).....	२१
३- भगवती श्रीसीताजी [आवरणचित्र-परिचय].....	६	१६- वास्तविक आनन्दके लिये क्या करें? (श्रीसीतारामजी गुप्ता).....	२२
४- तुम मुझे देखा करो और मैं तुम्हें देखा करूँ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका).....	७	१७- प्राणायामका मूल उद्देश्य (श्रीश्रीरिष शान्तारामजी कवडे).....	२४
५- 'कृष्ण हैं प्रशंसनीय' [कविता] (पं० श्रीशंकरलालजी गौड़ 'शम्भूकवि').....	७	१८- भगवन्नाम-जपका विज्ञान (श्रद्धेय स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी महाराज).....	३०
६- आत्महत्या पाप है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार).....	८	१९- महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र [संत-चरित] (श्रीहजारीमलजी बाँठिया).....	३४
७- श्रीराधा-माधवकी मधुर गोदोहन-लीला.....	९	२०- मानव-जीवनकी सफलताका राजमार्ग (श्रीरामवल्लभजी बियाणी).....	३९
८- सत्कर्म करनेमें सावधानी (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय).....	१०	२१- गोबर और गोमूत्रके तकनीकी उपयोग.....	४०
९- कृष्ण-मधुमंगल-विनोद (आचार्य श्रीरामकान्तजी गोस्वामी).....	११	२२- साधनोपयोगी पत्र.....	४१
१०- आत्मोद्धारके लिये चेतावनी [साधकोंके प्रति—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज).....	१२	२३- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढमासके व्रत-पर्व].....	४३
११- निकुंजलीलाके दर्शनाधिकारी.....	१४	२४- कृपानुभूति.....	४४
१२- यह बिनती रघुबीर गुसाई! (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा).....	१५	२५- पढ़ो, समझो और करो.....	४५
१३- सत्संगतिसे लाभ और कुसंगतिसे हानि (श्रीबरजोरसिंहजी).....	१८	२६- मनन करने योग्य.....	४८
		२७- कल्याणका आगामी ९४वें वर्ष (सन् २०२० ई०)-का विशेषाङ्क 'बोधकथाङ्क'.....	४९

चित्र-सूची

१- भगवती श्रीसीताजी.....	(रंगीन).....	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीबदरीनाथजी.....	(").....	मुख-पृष्ठ
३- भगवती श्रीसीताजी.....	(इकरंगा).....	६
४- महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र.....	(").....	३४
५- भक्तके ध्यानमें मान भगवान्.....	(").....	४८

एकवर्षीय शुल्क

₹२५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें
शुल्क

Air Mail }
वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000)

{
Us Cheque Collection
Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹१२५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु—gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—श्रीभगवान्‌के आश्रय बिना सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि सद्गुण वैसे ही नहीं ठहर सकते, जैसे बिना प्राणोंके शरीरकी इन्द्रियाँ। भगवान्‌का आश्रय न होनेपर सद्गुणोंसे मनुष्यके मनमें अभिमान उत्पन्न होता है, जो समस्त सद्गुणोंका नाशक और दुर्गुणोंका जनक है और तुरंत ही अपने परिवारको फैलाकर सद्गुणोंको हृदयसे निकाल देता है।

याद रखो—अभिमान मनुष्यको अपने दोष देखनेका अवसर ही नहीं आने देता, वह निरन्तर उसे अंधा बनाये रखता है, जिससे मनुष्य अपनी तनिक-सी भी सच्ची समालोचना, जो उसके लिये परम हितकर होती है, नहीं सह सकता; एवं इसलिये सहज ही दोषोंका घर बन जाता है।

याद रखो—जो मनुष्य अभिमानके वशमें होकर केवल जगत्-सम्मानके लिये लालायित हो उठता है, उसमें एक ऐसी दुर्बलता आ जाती है, जो उसके हृदयमें एक विषाक्त क्षत कर देती है। फिर वह सम्मानके लोभसे अपने अपराध, पाप, दोष, स्वार्थपरता, कृतघ्नता, नीचाशयता, परस्वापहरणता, परसुखकातरता आदि जघन्य वृत्तियोंको छिपाकर अपनेको सत्पुरुष प्रसिद्ध करनेके लिये न मालूम कितनी नयी-नयी झूठ बोलता है, कितने सुन्दर स्वाँग बनाता है और कितने उपदेश करता है, इससे उसको परिणाममें सम्मान तो मिलता ही नहीं; प्रत्युत उसके भीतरका घाव बढ़ता ही जाता है एवं अन्तमें ऐसी स्थिति हो जाती है कि एक दिन उसकी भीषण यन्त्रणासे छटपटाकर उसे आर्त पुकार करनी पड़ती है, परंतु फिर उसकी रक्षाका कोई सहज साधन नहीं रह जाता।

याद रखो—जो अपने अपराधोंको छिपाता है और दूसरोंपर सहस्रों नये-नये दोष मढ़नेका प्रयत्न करता है—वह बड़ा ही अभागा है। उसमें कभी सद्गुण आ ही नहीं सकते। सद्गुणोंको लाना और उन्हें स्थायीरूपसे अपने अन्दर बसाना हो तो समस्त सद्गुणोंके समुद्र भगवान्‌को हृदयमें बसा लो।

याद रखो—भगवान्‌के हृदयमें आते ही समस्त

दुर्गुण वैसे ही नष्ट हो जायँगे, जैसे सूर्यका उदय होते ही अन्धकार मर जाता है। जगत्‌का यह सूर्य तो फिर छिपता भी है, परंतु भगवान्‌ एक बार जिसके हृदयमें उदय हो जाते हैं—फिर वे कभी छिपते ही नहीं; एक बार जिसके हृदयमें आ बसते हैं, फिर वहाँसे निकालनेपर भी नहीं निकलते।

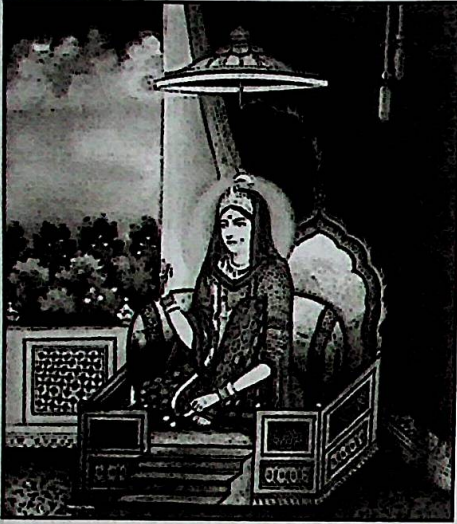
याद रखो—दुर्गुणका ही परिणाम दुःख है, जब दुर्गुण नहीं रहेंगे, तब दुःख भी नहीं रहेंगे। और सद्गुण आ जायँगे तो सद्गुणोंका स्वाभाविक परिणाम सुख भी अनायास ही आयेगा। साथ ही भगवान्‌की निवासभूमिमें सद्गुण उनके स्वभावगत होनेसे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि ये सद्गुण फिर कभी नष्ट नहीं होंगे, इसलिये सुख भी स्थायी और आत्यन्तिक होगा।

याद रखो—वस्तुतः सुख किसी सद्गुणमें नहीं है या सद्गुणका परिणाम भी नहीं है। यह तो भगवान्‌में स्वभावगत वैसे ही है, जैसे सूर्यमें स्वभावतः ही प्रकाश और उष्णता होती है और उसने अन्धकार एवं सर्दीका स्वाभाविक नाश होकर विलक्षण दृष्टिशक्ति और स्फूर्ति प्राप्त होती है। भगवान्‌से रहित जो सद्गुण हैं, वे वस्तुतः सद्गुण ही नहीं हैं। वे तो वैसे ही नकली गुण हैं, जैसे मिट्टीपर रंग चढ़ाये हुए नकली आम, अमरूद, संतरे, सेब आदि खिलौने होते हैं। जो ऊपरसे फल-से दीखते हैं, परंतु वे हैं केवल मिट्टी-ही-मिट्टी। इसी प्रकार भगवान्‌से रहित सद्गुण केवल कल्पनामात्र होते हैं। इस बातको समझो और समझकर निरन्तर अपने हृदयमें भगवान्‌को बसानेका प्रयत्न करो।

याद रखो—भगवान्‌ तो सभीके हृदयमें हैं; परंतु तुम इस बातपर विश्वास नहीं करते, इसीसे नित्य निवास करनेवाले भगवान्‌ भी वहाँ प्रकट नहीं हो पाते और इसीसे सद्गुण टिक नहीं पाते तथा दुर्गुणोंका परिवार बढ़ता रहता है। भजनके द्वारा विश्वास प्राप्त करो और फिर विश्वासकी आँखोंसे देखो, भगवान्‌ तुम्हारे अन्दर प्रकट हो जायँगे। उनके प्रकट होते ही तुम सब प्रकारसे निहाल हो जाओगे। 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती श्रीसीताजी



भारतीय देवियोंमें सती शिरोमणि भगवती श्रीसीताका स्थान सर्वोत्तम है। स्त्रीके शील और धैर्यकी तो श्रीसीताजीके चरित्रमें पराकाष्ठा है। यही कारण है कि भारतीय साहित्यके अधिकांश पृष्ठ श्रीसीताजीके धवल चरित्रके आज भी साक्षी बने हुए हैं। इतिहास-पुराणसे लेकर ग्रामीण लोक गीतोंतकमें श्रीसीताजीकी समानरूपसे प्रतिष्ठा हुई है।

प्राचीन कालमें मिथिलापुरीमें सीरध्वज जनक नामके प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, परम वैराग्यवान् तथा ब्रह्मज्ञानी थे। एक बार राजा जनक यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे। भूमि जोतते समय हलका फाल एक घड़ेसे टकराया। राजाने वह घड़ा बाहर निकलवाया। उससे राजाको अत्यन्त ही रूपवती कन्याकी प्राप्ति हुई। राजाने उस कन्याको भगवान्का दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्रीकी भाँति बड़े ही लाड़-प्यारसे उसका लालन-पालन किया। उस कन्याका नाम सीता रखा गया। जनककी पुत्री होनेके कारण वह जानकी भी कहलाने लगी। सीता शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनों-दिन बढ़ने लगी।

धीरे-धीरे जानकीजी विवाहयोग्य हो गयीं। जनकजीने धनुष-यज्ञके माध्यमसे उनके स्वयंवरका आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर देश-देशके राजा मिथिलामें पधारे। श्रीविश्वामित्रजीके साथ राम और लक्ष्मण भी आये। राजा जनकको जब उनके आनेका समाचार मिला, तब वे श्रेष्ठ पुरुषों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर उनसे मिलनेके लिये गये। श्रीरामकी

मनोहारिणी मूर्ति देखकर राजा विदेह (जनक) विशेष रूपसे विदेह हो गये। विश्वामित्रजीने श्रीरामके शौर्यकी प्रशंसा करते हुए जनकजीसे अयोध्यानरेश दशरथके पुत्रके रूपमें उनका परिचय कराया। इससे महाराज जनकको विशेष प्रसन्नता हुई।

पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताका प्रथम परिचय हुआ। दोनों चिरप्रेमी एक-दूसरेकी मनोहर मूर्तिको अपने हृदयमें रखकर वापस लौटे। सीताजीका स्वयंवर आरम्भ हुआ। देश-विदेशके राजा, ऋषि-मुनि, नगरवासी सभी अपने-अपने नियत स्थानपर आसीन हुए। श्रीराम और लक्ष्मण भी श्रीविश्वामित्रजीके साथ एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए। भाटोंने महाराज जनकके प्रणकी घोषणा की। शिवजीके कठोर धनुषने वहाँ उपस्थित सभी राजाओंके दर्पको चूर-चूर कर दिया। अन्तमें श्रीरामजी विश्वामित्रकी आज्ञासे धनुषके समीप गये। उन्होंने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके बड़े ही लाघवसे धनुषको उठा लिया। एक बिजली-सी कौंधी और धनुष दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर आ गया। प्रसन्नताके आवेग और सखियोंके मंगलगानके साथ सीताजीने श्रीरामके गलेमें जयमाला डाली। महाराज दशरथको जनकका आमन्त्रण प्राप्त हुआ। श्रीरामके साथ उनके शेष तीनों भाई भी जनकपुरमें विवाहित हुए। बारात विदा हुई तथा पुत्रों और पुत्रवधुओंके साथ महाराज दशरथ अयोध्या पहुँचे।

श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले अचानक चौदह वर्षका वनवास हुआ। सीताजीने तत्काल अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। श्रीरामके द्वारा अयोध्यामें रहनेके आग्रहके बाद भी सीताजीने सभी सुखोंको तृणके समान त्याग दिया और वे श्रीरामके साथ वन गयीं। सीताजी वनमें हर समय श्रीरामको स्नेह और शक्ति प्रदान करती हैं। श्रीरामका अयन (रामायण) महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षासे प्रारम्भ होकर जनकपुरमें शक्तिवरणपर समाप्त हुआ। वनमें रावणके द्वारा सीता-हरण करके उन्हें समुद्रके पार लंका ले जाना रामायणमें नया मोड़ लाता है। लंका-प्रवास भगवती सीताके धैर्यकी पराकाष्ठा है। समुद्रको पार करके श्रीरामने रावणके साथ अजेय राक्षसोंका संहार करके अपनी सीताशक्तिको पुनः प्राप्त किया। भगवती सीताके कारण ही जनकपुरवासियोंको श्रीरामका दर्शन और लंकावासियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ।

तुम मुझे देखा करो और मैं तुम्हें देखा करूँ

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारा मन वहीं लगता है, जहाँ हमारी अभिलषित वस्तु होती है, जहाँ हमें अपनी रुचिके अनुकूल सुख, सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य आदि दिखायी देते हैं। विचार करके देखनेसे पता लगता है कि जगत्में हम जो प्रिय वस्तु, सुख, सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य आदि देखते हैं, उन सभीका पूर्ण अमित अनन्त भण्डार श्रीभगवान् हैं। समस्त वस्तुएँ, समस्त गुण, समस्त सुख-सौन्दर्य भगवान्के किसी एक अंशके प्रतिबिम्बमात्र हैं। उस महान् अनन्त अगाध सागरके सीकर-कणकी छायामात्र हैं। हमें जो वस्तु जितनी चाहिये, जब चाहिये, वही वस्तु उतनी ही और उसी समय भगवान्में मिल सकती है; क्योंकि वे सदा-सर्वदा उनमें अनन्तरूपसे भरी हैं और चाहे जितनी निकाल ली जानेपर भी कभी उनकी अनन्ततामें कमी नहीं आती। अतएव हमारा मन जिस किसीमें लगता हो, उसीको दृढ़ विश्वासके साथ भगवान्में देखना चाहिये। फिर हम कभी भगवान्से अलग नहीं होंगे और भगवान् हमसे अलग नहीं होंगे; क्योंकि सब कुछ भगवान्से, भगवान्में है तथा भगवत्स्वरूप ही है—भगवान्ने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

‘जो मुझको सबमें देखता है और सबको मुझमें देखता है, उससे मैं अदृश्य नहीं होता और वह

मुझसे अदृश्य नहीं होता। भाव यह कि वह मुझे देखता रहता है और मैं उसे देखता रहता हूँ।’

इसीके साथ हमें अपनेको ऐसा बनाना चाहिये, जो भगवान्को अत्यन्त प्रिय हो। गीता बारहवें अध्यायके १३ वें से १९ वें श्लोकतक भगवान्ने अपने प्रिय भक्तके लक्षणोंका वर्णन किया है और अन्तमें कहा है—

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्धाणा मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(गीता १२।२०)

‘जो मेरे परायण हुए श्रद्धालु भक्त ऊपर बताये हुए इस धर्ममय अमृतकी भलीभाँति उपासना करते हैं अर्थात् उस प्रकारका अपना जीवन बनानेमें तत्पर होते हैं, वे मुझको अतिशय प्रिय हैं।’

इसलिये हमें अपनेमें उन सब भावोंकी दृढ़ स्थापना करनी चाहिये, जो भगवान्को प्रिय हैं। ऐसा होनेपर जब भगवान् हमसे प्रेम करने लगेंगे, उनका मन हममें लगा रहेगा—(प्रेम तो वे अब भी करते हैं; परंतु हमें उसका अनुभव नहीं होता, उनके अनुकूल आचरण करनेसे अर्थात् उन सब प्रिय गुणोंको जीवनमें उतारनेसे हमें भगवान्के प्रेमका अनुभव होने लगेगा) तब हमारा मन भी उनमें लगा रहेगा। हमें तो बस, विनोदपूर्वक भगवान्से यही भाव रखना चाहिये और यही मन-ही-मन कहना चाहिये कि ‘प्रभो! न तो मैं दूसरेको देखूँगा और न आपको देखने दूँगा।’

‘कृष्ण हैं प्रशंसनीय’

(पं० श्रीशंकरलालजी गौड़ ‘शम्भूकवि’)

❖ कृष्ण हैं प्रशंसनीय कमनीय महनीय,
❖ वन्दनीय सर्वविध नीतिके निधान हैं।
❖ असुर संहारी दीन हितकारी नित,
❖ ऋषि मुनि जिनका करते बखान हैं॥

❖ राधापति द्वारावती पति त्रिभुवनपति
❖ शौर्य सौख्य संयमके एक मूर्तिमान हैं।
❖ जन जन माहीं कृष्ण कन कन माहीं कृष्ण,
❖ यहाँ वहाँ कहाँ नहीं कृष्ण विद्यमान हैं॥

आत्महत्या पाप है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जीवन दुःखरूप है, भारभूत है; यह सब बाह्यदृष्टिकी कल्पना है। ऐसी निराशा नास्तिकोंके जीवनमें ही अपना अन्धकार फैलाती है। अन्तर्दृष्टिमें जहाँ जीवनके आधारस्तम्भ मंगलमय परमात्मा—सुखरूप भगवान् हैं; वहाँ उसे त्यागनेकी भावना ही क्यों उठे? जो जीवन भगवान्की भावनासे शून्य है, वही अनित्य और असुख है; अतः आवश्यकता इस बातकी है कि उसे पाकर भगवान्का भजन और चिन्तन किया जाय। ऐसा करते ही यह भगवन्मय हो जायगा। फिर यहाँ दुःख और अन्धकारका प्रवेश नहीं हो सकता। इसीलिये भगवान्का यह आदेश है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

जहाँ आपको पग-पगपर कीचड़ दिखायी देता है, वहीं अमृतकी अमन्द मन्दाकिनी भी बहती है। जहाँ आप मरुकी उत्तप्त बालुकाके सिवा और कुछ नहीं देखते, उसी जगह अनन्त अगाध शीतल सलिलका अपार पारावार भी लहरा रहा है। जहाँ चप्पे-चप्पेपर आपकी दृष्टिमें केवल कंटक-वृक्ष और झाड़ियाँ ही हैं, वहीं दूसरे लोग मनोहर मधुवनका भी दर्शन करते हैं; क्या आपकी ही दृष्टि सत्य है? दूसरोंकी नहीं? आप क्या कह सकते हैं, जो लोग यहाँ दुःख-ही-दुःख देखते हैं, वे अपने जीवनका अन्त कर दें तो क्या हर्ज? परंतु यह भी एक भ्रम ही है। सूर्य डूबनेके बाद जब सारे जगत्पर अन्धकार छा जाता है, उस समय क्या कोई भी व्यक्ति इसलिये अपने जीवनका अन्त कर डाले कि संसारमें अन्धकार-ही-अन्धकार है। नहीं, उसे पुनः प्रकाश प्राप्त होगा, ऐसा समझकर उस अन्धकारके कष्टको सहन करना चाहिये। यही बात रोगके सम्बन्धमें भी है। रोग और दुःख सभी आगमापायी हैं। आते हैं और चले जाते हैं। अतः आनेपर उनके निवारणका उपाय करना ही कर्तव्य है; रोगीके जीवनका अन्त कर डालना

नहीं। कीचड़ पड़ जानेपर कपड़ेको धोया जाता है, फेंका नहीं जाता; उसी प्रकार पापपंकमें फँसे हुए तन, मन, जीवनको पुण्यके पावन सलिलसे धोकर स्वच्छ बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये, त्यागनेकी नहीं। कपड़ा तो हम स्वयं बनाते और पहनते हैं; अतः स्वेच्छासे उसे त्याग भी सकते हैं; परंतु यह तन और जीवन हमें किसी दूसरी शक्तिसे प्राप्त हुए हैं। जिसने दिया है, वही इसे ले सकता है। हमारा काम है इसका सदुपयोग करना। इसको नष्ट करना हमारी अनधिकार चेष्टा है; इसके लिये हमें दण्ड मिलना चाहिये।

मकान पुराना हो जाय अथवा गिरने लगे तो उसे छोड़नेमें जैसे मकानमालिकको कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार यह शरीर गिर जाय अथवा वृद्ध हो जाय तो मोहवश इसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही दृष्टान्त लिया जा सकता है। मकान गिर ही जायगा या उसमें खतरा है—इस दृष्टिसे अपनी ही इच्छासे उसको मालिक छोड़ देता है, इसी प्रकार शरीर एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही, उसमें रोगका आक्रमण हो चुका है, इसलिये स्वेच्छासे उसको गोली मार दी जाय अथवा अन्य उपायोंसे नष्ट कर दिया जाय, ऐसी सलाह देना पागलपन है। मकान तो आप स्वयं बनाते या बनवाते हैं। एक आदमी कई मकान बनवाकर सबमें बारी-बारीसे रहता है। एक छोड़कर दूसरेमें जाता है, फिर उसको छोड़कर पहलेमें ही आ जाता है, यह स्वतन्त्रता शरीरके सम्बन्धमें नहीं है। यह शरीर हमें प्राप्त हुआ है। हमने बनाया नहीं है। अतः हम स्वेच्छासे इसका त्याग नहीं कर सकते। यह ठीक है कि अपने ही कर्मोंके परिणामस्वरूप यह शरीर मिला है तथापि हम इसके स्रष्टा नहीं हैं। हमें विवश होकर इस शरीरको ग्रहण करना पड़ता है और विवश

होकर ही इसे छोड़नेको उद्यत होना पड़ता है। मकानका एक भाग तोड़कर हम उसे अपनी इच्छाके अनुसार बना सकते हैं; परंतु शरीरके एक अवयवमें भी हमें स्वेच्छानुसार परिवर्तन करनेका अधिकार नहीं है; अतः शरीर हमें एक धरोहरके रूपमें मिला है। इसकी रक्षा और इसका सदुपयोग—इतना ही हमारा कर्तव्य है। इसको नष्ट करना महान् अपराध है। आधुनिक कानूनकी दृष्टिसे भी आत्मघातकी चेष्टा महान् अपराध है। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर और स्वामी श्रीरामतीर्थके अनुसार परमात्माके अस्तित्वपर सन्देह करना आत्मघातसे भी अधिक भयंकर है। मृत्यु अनिवार्य है, इसलिये जब चाहे तब क्षणिक कष्टको सहन न करके जीवनको नष्ट कर डालना त्याग नहीं, अविवेक है। बच्चा पैदा होते समय प्रत्येक गर्भवतीको बड़ा कष्ट होता है, कई मर भी जाती हैं; अतः सभी गर्भिणी स्त्रियोंको गोली मार देनी चाहिये; ऐसी बातें भी कही जा सकती हैं; किंतु क्या आप इसका अनुमोदन करेंगे? जीवनमें दुःख और कष्टके अनेक अवसर आते हैं; इसलिये उनसे बचानेकी इच्छासे क्या नवजात शिशुको मार डालना उचित होगा? यदि ऐसी ही व्यवस्था दे दी जाय तो सारे जगत्का प्रलय हो जाय। युद्धमें

बहुत कष्ट होता है, प्राणतक देने पड़ते हैं; अतः उनसे बचनेके लिये कायरोंकी तरह मुँह छिपाकर घरमें बैठा रहा जाय, यह सलाह कोई कायर ही दे सकता है। कोई भी ऐसी युक्ति नहीं है, जो आत्मघातकी नैतिकता सिद्ध कर सके। जैनधर्ममें भी आत्मघातकी आज्ञा नहीं दी गयी है। उनके यहाँ एक व्रत है, जिसमें धीरे-धीरे तपस्यासे अपनेको मुक्तिके पथपर अग्रसर कराया जाता है। उसे आत्मघातका प्रयत्न कहना, उसकी निन्दा करना है।

उपनिषदोंमें आत्मघातकी नरककी प्राप्ति बतायी गयी है। यह पापका ही दण्ड है। पाप और पुण्यका निर्णय शास्त्रसे ही होता है। शास्त्रोंमें आत्मघातको पाप बताया है। अतः वह पाप ही है। कोई भी युक्ति उस पापसे छुटकारा नहीं दिला सकती। हमारा जीवन अनादिकालसे चला आ रहा है, यदि मुक्त नहीं हुआ तो अनन्त कालतक चलता रहेगा। जन्म और मृत्यु तो उस जीवन-नाटकके एक दृश्यके आरम्भ और पटाक्षेपमात्र हैं। आज जगत्में कोई सुखी और कोई दुखी क्यों है? यह पूर्वजन्मके कर्मोंका ही परिणाम है। इससे पुनर्जन्म स्वतः सिद्ध हो जाता है। नित्य सुखकी प्राप्तिका उपाय आत्मघात नहीं, भगवान्का भजन है।

श्रीराधा-माधवकी मधुर गोदोहन-लीला

एक बार गोदोहनके समय किशोरी श्रीराधाजी खड़ी-खड़ी गोदोहन होते देख रही थीं। देखते-देखते उनकी स्वयं भी गोदोहन करनेकी इच्छा हुई। वे भी एक मटकी लेकर एक गड़याका दूध दुहने लगीं। उसी समय कौतुकी कृष्ण भी वहाँ आ पहुँचे और बोले—‘सखी! तोपे दूध काढ़वो भी नहीं आवे है, ला मैं बताऊँ।’ यह कहकर पास ही बैठ गये। श्रीराधाजीने उनसे कहा—‘अरे मोहन मोए सिखा।’ यह कहकर सामने बैठ गयी। कृष्णने कहा—‘अच्छौ दो थन आप दुहो और दो मैं दुहों, आप मेरी ओर निगाह राखो।’ कृष्ण ठिठोली करते हुए दूधकी धारा निकालने लगे। उन्होंने हठात् एक धारा राधाजीके मुखमण्डलमें ऐसी मारी कि राधाजीका मुखमण्डल दूधसे आच्छादित हो गया। इस प्रकार लीला करते हुए दोनों आनन्दित होकर हँसने लगे।

यह लीला जिस स्थानपर हुई थी, वह आज भी ‘दोहनी-कुण्ड’ नामसे प्रसिद्ध है। कभी यहाँ पर महाराज वृषभानुकी गायोंके रहनेका खिड़क (स्थान) था। यह स्थान गहवरवनकी पश्चिम दिशामें समीप ही चिकसौली ग्रामके दक्षिणमें स्थित है।

सत्कर्म करनेमें सावधानी

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

मानसमें सत्कर्म करनेपर अतिशय बल दिया गया है, किंतु सत्कर्म करते समय भी कुछ सावधानीकी आवश्यकता होती है। भगवान् राम कहते हैं—‘लक्ष्मण, साधक जब अपने जीवनमें सत्कर्मकी खेती करता है, तब उसके बगलमें ही पूर्वजन्मोंके उसके अन्तःकरणमें छिपे हुए बुरे संस्कार भी अंकुरित हो जाते हैं, जैसे—अहंकार। ऐसी परिस्थितिमें उसकी सावधानी यह होनी चाहिये कि अहंकारके बुरे संस्कारके पौधोंको हरिके सुमिरणकी खुरपीसे उसी प्रकार निराते हुए चले जैसे, विद्वान् लोग मोह, मद और मानका त्याग कर देते हैं।’

अहंकारकी उत्पत्ति—किसान अन्न पैदा करनेके लिये खेतको जोतता है, उसमें उत्तम बीज डालता है और उसकी सिंचाई करता है। किसान अपनी इस क्रियाके द्वारा खेतसे अन्न ही लेना चाहता है, किंतु उसका अनुभव है कि वह कितना भी बढ़िया खेत क्यों न जोते और उसमें कितने ही उत्तम बीज क्यों न डाले, अन्नके पौधे उगनेके साथ-साथ वहाँ घासके भी पौधे उग आते हैं। अन्न तो किसानने ऊपरसे डाला, फिर घास कहाँसे आ गयी? इसका उत्तर यह है कि घास पहलेसे ही पृथ्वीमें बीजके रूपमें विद्यमान है।

यही स्थिति हमारे-आपके अन्तःकरणकी है। हम और आप सत्संगमें जाते हैं, और कुछ अच्छी बातें सुनते हैं। अच्छे विचारके बीज मनमें डालते हैं। ये बीज अन्तःकरणके अच्छे संस्कारके रूपमें प्रकट होते हैं। लेकिन इनके साथ ही जन्म-जन्मान्तरोंके बुरे विचारोंके बीज भी वहाँ छिपे हुए हैं और वे भी अवसर मिलते ही अनजानेमें प्रकट हो जाते हैं।

हम कितने भी उत्तम सत्कर्म क्यों न करें, किंतु इनके साथ अहंकारका उपजना स्वाभाविक ही है। बहुतसे साधक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओंके ऊँचे पदोंपर विराजमान हैं, किंतु अधिकांश साधक अहंकारके रोगसे ग्रसित हैं। कहा भी गया है कि पद और मद दोनों भाई हैं। पदके साथ मदकी सम्भावनाएँ बहुत हैं।

विडम्बना यह है कि अहंकारका रोगी अपनेको रोगी नहीं मानता। हमारे शास्त्रोंने अहंकारके लक्षण भी बताये हैं। इन लक्षणोंके आधारपर हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये तथा अहंकारके रोगसे बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

अहंकारीके लक्षण

(१) अहंकारी व्यक्ति बड़ा पुण्य-प्रदर्शन-प्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति अच्छा कार्य भी करता है तो उसके पीछे उसका उद्देश्य केवल प्रदर्शन करना ही होता है।

(२) वह अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है और अन्य लोगोंकी सारी अच्छाइयाँ उसे हीन लगने लगती हैं।

(३) प्रशंसाकी भूख इतनी बढ़ जाती है कि उसका कभी पेट नहीं भरता। वह स्वयं भी अपनी प्रशंसा करता नहीं थकता एवं दूसरोंसे अपनी प्रशंसा सुनकर नहीं अघाता।

(४) क्रोधी होता है। अपने अहं पर जरा-सी भी चोट सहन नहीं करता, आगबबूला हो जाता है।

(५) उसे दूसरोंसे अपने चरणस्पर्श करवाना, फूल-माला डलवाना, फोटो खिंचवाना एवं अपना प्रचार मीडिया एवं अन्य माध्यमोंके द्वारा करवाना बड़ा प्रिय लगता है।

(६) दान आदि ऐसे स्थानोंमें देना जहाँ उसका नाम हो।

(७) अहंकारी व्यक्ति ईर्ष्यालु होता है। कोई दूसरा व्यक्ति अच्छा कार्य करे तो उसे सुहाता नहीं है। उसके मार्गमें विघ्न डालता है। उसे भय रहता है कि कहीं वह यशमें मुझसे आगे न निकल जाय।

अहंकारका स्वरूप

संक्षेपमें हमारा अहंकार ही भगवान्की शरणागति करनेमें बाधक है। मनुष्यकी गहरी-से-गहरी और पहली बीमारी अहंकार है। जहाँ अहंकार है, वहाँ दया झूठी है। जहाँ अहंकार है, वहाँ अहिंसा झूठी है। जहाँ अहंकार है, वहाँ शान्ति झूठी है। जहाँ अहंकार है, वहाँ मान-सम्मान झूठा है। जहाँ अहंकार है, वहाँ कल्याण,

मंगल और लोकहितकी बातें झूठी हैं, वहाँ सारी-की-सारी बातें अहंकारका आभूषण हैं, सिवा इसके और कुछ भी नहीं हैं।

अहंकारकी चिकित्सा

मानसके उत्तरकाण्डमें गोस्वामीजीने अहंकारको मानसिक रोगोंकी श्रेणीमें वर्णन किया है—‘अहंकार अति दुःखद डमरुआ।’

अर्थात् अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरु (गाँठका) रोग है। गोस्वामीजी कहते हैं, औषधियाँ तो करोड़ों हैं, परंतु उनसे ये अहंकारादि मानसरोग नहीं जाते। उनके अनुसार इनके नाशके लिये एक ही उपाय है—वह है, श्रीरघुनाथजीकी भक्ति यह एक ऐसी संजीवनी जड़ी है, जिससे यह रोग चला जाता है, परंतु उसके लिये अनुपानरूपमें श्रद्धासे पूर्ण बुद्धि होनी चाहिये—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

(रा०च०मा० ७।१२२।७)

जबतक हमारे अहंकारका नाश नहीं होगा, भगवान् हमें अपनी शरणमें नहीं लेंगे। अब प्रश्न यह है कि हमारा अहंकार कैसे छूटे? संत लोग ऐसा बताते हैं कि

हम अपने साधनोंके द्वारा अहंकारको नहीं छोड़ सकते। यह साधन-साध्य नहीं है, बल्कि भगवान्की कृपासाध्य है। हमें भगवान्की कृपा प्राप्त करनी होगी। हमें भगवान्की कृपा पानेके लिये उनका कृपापात्र बनना होगा। कृपापात्र बननेके लिये हमें प्रभुका नित्य-निरन्तर सुमिरन करना होगा। ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीने अहंकार-विनाशका अत्यन्त सरल उपाय बताते हुए कहा है कि थोड़ी-थोड़ी देरमें भगवान्से प्रार्थना करें कि ‘हे प्रभु! मैं आपको भूलूँ नहीं।’ बार-बार नीचे लिखे भजनको गायें—

शरणमें आए हैं हम तुम्हारी दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मेरे अहंकारको दया करो हे दयालु भगवन्॥
न हममें बल है न हममें शक्ति, न हममें साधन न हममें भक्ति।
तेरे दरके हैं हम भिखारी, दया करो हे दयालु भगवन्।
मिटा दो मेरे अहंकारको दया करो हे दयालु भगवन्॥

इस प्रकार जब हम भगवान्से बार-बार प्रार्थना करेंगे तो अवश्य ही भगवान् कृपा करके हमारे अहंकारका विनाश कर देंगे।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

कृष्ण-मधुमंगल-विनोद

(आचार्य श्रीरामाकान्तजी गोस्वामी)

एक समय सखाओंके साथ कृष्ण यहाँ गोचारण कर रहे थे। सखा मधुमंगलने हँसते हुए श्रीकृष्णसे कहा—‘प्यारे सखा! यदि तुम अपना मोरमुकुट, मधुर मुरलिया और पीत वस्त्र मुझे दे दो तो सभी गोप-गापियाँ मुझे ही प्यार करेंगी तथा रसीले लड्डू मुझे ही खिलायेंगी, तुम्हें कोई पूछेगा भी नहीं। कृष्णने हँसकर अपना मोरपंख, पीताम्बर, मुरली और लकुटी मधुमंगलको देकर उसे सजा दिया तथा उसके वस्त्र स्वयं पहन लिये। फिर तो मधुमंगल इठलाता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। इतनेमें ही महापराक्रमी केशी दैत्य विशाल घोड़ेका रूप धारणकर कृष्ण-वध करनेके लिये हिनहिनाता हुआ वहाँ उपस्थित हुआ। उसने महाराज कंससे सुन रखा था कि जिसके सिरपर मोरपंख, हाथोंमें मुरली, अंगोंपर पीत वस्त्र देखना, उसे कृष्ण समझकर अवश्य मार डालना। उसने कृष्णके वेशमें सजे हुए मधुमंगलको देखकर अपने दोनों पिछले पैरोंसे आक्रमण किया। कृष्णने झपटकर पहले मधुमंगलको बचा लिया। पश्चात् केशी दैत्यका वध किया। मधुमंगलको केशी दैत्यके पिछले पैरोंकी चोट तो नहीं लगी, किंतु उसकी हवासे ही उसके होश उड़ गये। केशी-वधके पश्चात् वह सहमा हुआ तथा लज्जित होता हुआ कृष्णके पास गया और उनकी मुरली, मयूर मुकुट, पीताम्बर लौटाते हुए बोला—मुझे लड्डू नहीं चाहिये। प्राण बचे तो लाखों पाये। ग्वाल-बाल हँसने लगे। आज भी केशी घाट इस लीलाको अपने हृदयमें सँजोये हुए विराजमान है।’

साधकोंके प्रति—

आत्मोद्धारके लिये चेतावनी

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रीमद्भगवद्गीता एक अनमोल ग्रन्थ है, अमूल्य रत्नोंका आकर है। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोगके गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वोंको भगवान् बोलचालकी सामान्य भाषामें ही समझा देते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके वास्तविक अनुभवके आधारपर ही गीताका उपदेश चलता है।

गीताका उपदेश प्रारम्भ करते ही सर्वप्रथम भगवान् दूसरे अध्यायके ११ वेंसे ३० वें श्लोकतक (विवेक-प्रकरणमें) यह स्पष्ट करते हैं कि शरीर (देह) एवं शरीरी (आत्मा) एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। शरीर अनित्य, असत्, एकदेशीय और नाशवान् है तथा शरीरी नित्य, सत्, सर्वव्यापी एवं अविनाशी है। अतएव नाशवान् वस्तुका विनाश देखकर दुखी नहीं होना एवं उसको बनाये रखनेकी इच्छा न करना 'विवेक' कहलाता है। इस सम्पूर्ण प्रकरणमें भगवान्ने एक भी दार्शनिक शब्द, जैसे—आत्मा, अनात्मा, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, अविद्या, जगत्, माया आदिका प्रयोग नहीं किया है, प्रत्युत मनुष्य सरलतासे समझ सके, ऐसी भाषा एवं शैलीसे उन्होंने उसका विवेचन किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्यमात्र, चाहे वह विद्वान् हो या मूर्ख, परमात्म-प्राप्तिका अधिकारी है। मनुष्य-शरीर परमात्म-प्राप्तिके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ही मिलता है। इसलिये मनुष्यमात्र उपर्युक्त विवेकका आश्रय लेकर सुगमतापूर्वक परमात्म-प्राप्ति कर सकता है।

विचार करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक तो प्रत्यक्ष दीखनेवाला शरीर है और एक उसमें रहनेवाला जीवात्मा (शरीरी) है। जीवात्माके रहनेसे ही प्राण कार्य करते हैं और शरीर संचालित होता है। जीवात्माके साथ प्राणोंके निकलते ही शरीरका संचालन बन्द हो जाता है और शरीर सड़ने लगता

है। लोग उस शरीरको श्मशानमें ले जाकर जला देते हैं। यदि शरीर और जीवात्मा दोनों पहलेसे ही भिन्न-भिन्न न होते तो मृत्युकालमें भी वे अलग नहीं होते। इससे सिद्ध होता है कि शरीर और जीवात्मा दोनों भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंकी एकता केवल अज्ञानवश ही प्रतीत होती है। इस तथ्य (शरीर एवं शरीरीकी स्वतःसिद्ध भिन्नता)—का यथार्थ बोध हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है, उसका कल्याण हो जाता है।

शरीर तथा धनादि नाशवान् पदार्थोंका नाश हो जानेपर मनुष्य अपनी विपरीत मान्यताके कारण ही दुखी होता है। वह इस तथ्यको गम्भीरतासे स्वीकार नहीं करता कि नाश केवल नाशवान्का ही होता है, अविनाशीका नहीं। उसने प्राकृतिक पदार्थोंके सम्बन्धमें ऐसी मान्यता कर रखी है कि ये पदार्थ मेरे हैं, मेरे पास रहेंगे एवं मुझे इससे सुखकी प्राप्ति होगी। अतः वह इनके अधिकाधिक संग्रहमें लगा रहता है। किंतु सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत्में प्रतिक्षण ही परिवर्तन एवं विनाश होता रहता है, विनाशके अतिरिक्त और कोई बात उसमें है ही नहीं। अतः शरीर एवं धनादि पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। इनका नाश होनेपर मनुष्यने भ्रमसे इनको जो रहनेवाला अर्थात् अविनाशी मान रखा है, उस मान्यतापर ठेस पहुँचती है एवं वह दुखी हो जाता है। यदि मनुष्य इनको पहलेसे ही नाशवान् मान ले (जो कि यथार्थतः हैं ही) एवं संयोग-कालमें ही इनसे वियोगका अनुभव कर ले तो उसे किसी भी प्रकारसे दुःख हो ही नहीं सकता। दुःख केवल इसी कारणसे होता है कि नाशवान् पदार्थोंको रहनेवाला (स्थायी) मान लेते हैं एवं अविनाशी परमात्माकी ओर दृष्टि ही नहीं करते, किंतु तथ्य तो यह है, जिसे गीता कहती है कि—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

(१३।२७)

‘जो पुरुष नष्ट होते हुए सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें परमेश्वरको नाशरहित एवं समभावसे स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है।’

जन्म लेनेके पश्चात् मनुष्यका निश्चित (सन्देहरहित) कार्य मरना ही है। वह विद्वान् बनेगा या नहीं, उसका विवाह होगा या नहीं, धनवान् होगा या नहीं, माता-पिताका आज्ञाकारी होगा या नहीं—इन सबमें सन्देह है, किंतु वह मरेगा, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। अतः शरीर अवश्य ही नष्ट होगा—ऐसा पहलेसे ही निश्चय हो जाय तो फिर मृत्युका समय आनेपर दुःख नहीं होगा। किंतु आशा लगा लेते हैं जीनेकी—जो सर्वथा असत्य एवं अज्ञानमूलक है। यह तो मृत्युलोक है। यहाँ मरने-ही-मरनेवाले लोग रहते हैं। मरनेवालोंके इस लोकमें कोई मर जाय तो कोई नयी बात नहीं हुई, अपितु इस लोककी रीति ही पूरी हुई है। यहाँ तो ऐसा होगा ही, इसे हम रोक नहीं सकते। जैसे समुद्रमें प्रतिक्षण लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार इस संसार-समुद्रमें भी प्रतिक्षण मृत्युकी लहरें उठती रहती हैं। स्वयं श्रीभगवान्ने इस संसारको ‘मृत्यु-संसार-सागर’का नाम दिया है (गीता १२।७)। जैसे सागरमें जल-ही-जल है, वैसे ही इस मृत्युलोकमें मृत्यु-ही-मृत्यु है और कुछ नहीं। ऐसे क्षणभंगुर संसारमें ऐसा मानना कि यह शरीर रहेगा, ये धनादि पदार्थ रहेंगे, मान-बढ़ाई रहेगी—सर्वथा सूरदासका ही काम है। किसीको अन्धा कह दिया जाय तो वह बहुत बुरा मानता है। किंतु ऐसे पुरुषोंके लिये गीता बहुत ही सभ्य भाषामें कहती है—‘न स पश्यति दुर्मतिः’ (गीता १८।१६) उसकी बुद्धि महान् दूषित है, वह देख नहीं रहा है।

एक बालक अपनी माँसे कहे कि ‘यह बर्फ बहुत ठंडी है, इसे गर्म कर दे, इसे ऐसा बना दो कि गले ही

नहीं तो यह सर्वथा असम्भव बात है। बर्फ तो गलनेवाली है, वह तो गलेगी ही। ऐसे ही यह आशा रखना कि यह शरीर बना रहे, स्वस्थ रहे, धन-सम्पत्ति, मान-बढ़ाई आदि बनी रहे—यह सर्वथा असम्भव बात है। यह तो गलनेवाली बर्फ है। बालक तो बड़ा होनेपर सम्भवतः वैसा हठ न करे—उसमें समझ आ जाय। किंतु यहाँपर यह समझ कब आयेगी? वैसे बड़े हम कब होंगे, जब इस शरीरका विश्वास नहीं करेंगे? इसको स्थिर रखना नहीं चाहेंगे? कौन-सा दिन होगा, जब यह बचपना छूटेगा? यहाँ अपना उद्धार करनेके लिये आये थे या दुःखरूप जड़ पदार्थोंका संग्रह करनेके लिये? जिस जीवनमें परमात्मा मिल सकते हैं, सदा-सदाके लिये कृतकृत्य, प्राप्त-प्राप्तव्य, ज्ञात-ज्ञातव्य हो सकते हैं, परमानन्दकी प्राप्ति कर सकते हैं, उसे विषयभोगोंमें लगा दिया—यह कहाँकी बुद्धिमानी है? आयु प्रतिक्षण समाप्त हो रही है, मौत प्रतिक्षण समीप आ रही है—कभी इस बातपर विचार किया है? कब विचार करेंगे? कौन-सी पाठशालामें यह पढ़ाई होगी? रावण-हिरण्यकशिपु—जैसे धरती तौलनेवालोंका पता नहीं लगा, फिर आप कौन-से बलपर निश्चिन्त बैठे हैं? क्या यमराजसे कोई मित्रता कर रखी है? मृत्युका कोई पट्टा है आपके पास? कब ध्यान देंगे? कौन करेगा आपकी सहायता?’

यह कितने आश्चर्य एवं दुःखकी बात है कि मनुष्य जीवनके अमूल्य समयको नाशवान् पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये नष्ट कर रहे हैं। धन कमाने एवं दूसरोंका मन आकर्षित करनेमें तो वेश्या भी बड़ी चतुर है—

तुलसी सो नर चतुर है, राम भजन लवलीन।

पर-धन पर-मन हरणको, वेश्या भी परवीन॥

अत्यधिक धन एकत्र कर लिया, दूसरोंको रिझाकर प्रशंसा प्राप्त कर ली तो अधिक-से-अधिक वेश्याका स्थान प्राप्त हो गया, इससे अधिक और क्या हुआ? धन-ऐश्वर्य तो बड़े-बड़े चोर-डाकुओंके पास भी बहुत

मिलते हैं। क्या मनुष्य-शरीर वेश्या एवं चोर-डाकुओं-जैसा स्थान प्राप्त करनेके लिये मिला है? बम्बई-कलकत्ता-जैसे शहरोंमें ऐसे-ऐसे कुत्ते हैं, जिनकी देख-रेखके लिये एक-एक, दो-दो नौकर नियुक्त रहते हैं। वे नरम-नरम गद्दोंपर सोते हैं, मोटर, हवाई जहाजोंमें घूमते हैं। उनको ऐसा शारीरिक सुख प्राप्त है, जो कई मनुष्योंको भी प्राप्त नहीं है। किंतु क्या उन कुत्तोंको परमात्माकी प्राप्ति होती है?—नहीं; और, मनुष्य-शरीर परमात्मा-प्राप्तिके लिये ही है। किंतु इस परमात्म-प्राप्तिरूप अनन्त, अखण्ड सुखकी उपेक्षाकर हम ऐसे नीच एवं नाशवान् विषय-सुखोंके लिये लालायित रहते हैं, जो कुत्तों एवं गद्दोंको भी प्राप्त हैं। जो मनुष्य-शरीरका महान् नाश कर देते हैं, वे अपना बड़ा भारी पतन स्वयं कर देते हैं। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति मनुष्य कहलानेके लिये अधिकारी नहीं हैं।

सभी शास्त्र-पुराणों एवं सन्त-महात्माओंका सुनिश्चित मत है कि मनुष्य-शरीर परमात्माकी अनन्तकृपाके फलस्वरूप ही मिलता है एवं मिलता है केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही। अपने 'मानस'में तुलसीदासजी कहते हैं—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुं भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मन खोई॥

कबहुं करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

परमात्माकी प्राप्ति होनेपर जीवको सदाके लिये परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। फिर उसे कुछ भी पाना, जानना अथवा करना शेष नहीं रहता। यह एक ऐसा विलक्षण लाभ है, जिसकी प्राप्तिके पश्चात् और कोई लाभ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, मनुष्य भीषण दुःखसे भी विचलित नहीं हो सकता (गीता ६।२२)। उसके सम्पूर्ण दुःख एवं अभाव सदा-सदाके लिये मिट जाते हैं और वह पूर्ण एवं तृप्त हो जाता है। सांसारिक पदार्थ तो किन्हीं दो व्यक्तियोंको भी समानरूपसे नहीं मिलते, किंतु परमात्मा सभीको समान ही मिलते हैं। सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे दुःख मिटते नहीं, अपितु और बढ़ते हैं; किंतु परमात्माकी प्राप्तिसे दुःखका बीज ही नष्ट हो जाता है। परमात्माकी प्राप्ति का यह साधन केवल मानव-शरीरमें ही हो सकता है एवं इसके सभी अधिकारी हैं, कोई भी अपात्र, निर्बल, अयोग्य अथवा अनधिकारी नहीं है। बड़े-बड़े देवता भी मनुष्य-शरीरके लिये तरसते हैं, किंतु यह भगवत्कृपा बिना सहज नहीं मिलता है। ऐसे विलक्षण मानव-शरीरको प्राप्त करके भगवत्प्राप्तिके जन्मसिद्ध अधिकारको ठुकराकर दुःखरूप विषयभोगोंके लिये लालायित रहना महान् आत्मघात है। भगवत्प्राप्तिके साधनको कठिन बताना भी सर्वथा अनुचित है। साधनमें लगे रहना ही पुरुषार्थ है।

निकुंजलीलाके दर्शनाधिकारी

प्रिया-प्रियतम नित करत बिहार।

नित्य निकुंज परम सोभन सुचि, माया-गुन-गो-पार॥
नहिं तहैं रबि-ससि की दुति, नहिं तहैं भौतिक अन्य प्रकास।
नित्य उदित दिव्याभा तनु की छाई रहत अकास॥
जिन की पद-नख-प्रभा ब्रह्म बनि ज्ञानीजन-मन छाई।
जिन की ही सत्ता-प्रभुता सब जगमें रही समाई॥
जिन के हास-बिलास-रास-रस सब निरगुन हरि-रूप।
मायिक गुन प्रबिसत न तहाँ, चिन्मय सब बस्तु अनूप॥

दिब्य निकुंज मध्य नहिं संभव असरीरी-अस्तित्व।
बिलसित नित्य दिब्य अति भगवत्-रूप प्रेम कौ तत्त्व॥
सखी-मंजरी सज्या-सोभा लीला-साधन अन्य।
सबहि स्याम-स्यामामय, प्राकृत नाम, भए ते धन्य॥
कहत सुनत समुझत सोइ मानव, जो तजि भोगासक्ति।
रहत निरंतर सेवा-रत जो करत निर्भरा भक्ति॥
सोइ देखत निकुंज की लीला अनुपम दिब्य महान्।
जिन कों दै अधिकार दिखावत स्वयं जुगल भगवान्॥

[पद-रत्नाकर]

यह बिनती रघुबीर गुसाईं!

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

दीनदयाल; मैं सदासे यह समझता आया कि यह कष्टकी पराकाष्ठा है; पर आश्चर्य! आगे और भी कष्ट बढ़ता गया। कई बार मैंने कष्टोंको 'आपके स्मरणका हेतु' समझकर स्वागत भी किया; पर नाथ अब तो बुद्धि स्थिर नहीं रही। यह बात बिलकुल सत्य है कि मैंने आपका कभी भी ठीक ढंगसे स्मरण भी नहीं किया। सम्भव है, इसीलिये आपने उसकी उचित चिकित्साके लिये इसकी मात्रा अधिकाधिक बढ़ा दी हो और विवश कर दिया हो, निरन्तर अपनी ही ओर वृत्तियोंको एकाग्र कर देनेके लिये। यदि ऐसी बात है तो ये दोनों ही हमें सहर्ष स्वीकार हैं। न मुझे ऐसे कष्टसे ही घबराहट है और न कभी मैं आपकी स्मृतिसे—ध्यानसे ही पराङ्मुख होना चाहता हूँ। सच्ची बात तो यह है कि आपके अबाध ध्यानके लिये ही मेरे सारे प्रयत्न हैं। सचमुच मैं सर्वस्व त्यागकर भी आपकी अविरत—निरन्तर सुमधुर स्मृतिको जगाये रखनेकी लालसा रखता हूँ। कहा जाता है कि 'आपके चरणोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-ताप तथा अमंगलोंको नष्ट कर देती है। वह परम शान्ति तथा लोकोत्तर सुखका संचार करती है। उसके द्वारा अन्तःकरणकी नितान्त शुद्धि हो जाती है; उससे आपकी विशुद्ध भक्ति, पर वैराग्य एवं ज्ञान-विज्ञानकी भी प्राप्ति होती है।' ^१ पर मैं तो इन सबोंके न होनेपर भी अकारण ही उसकी लालसा रखता हूँ। वस्तुतः ऊपर जो कुछ हो, उसकी चिन्ता नहीं; पर जैसे अत्यन्त भूखेको अन्न, तृषातुरको जलकी लालसा होती है, वैसे ही अरविन्दाक्ष! मेरा मन आपकी निरन्तर स्मृतिकी इच्छा करता है। नाथ! जैसे बिना पंखका पक्षि-

शावक अपनी माता पक्षिणीकी राह देखता है, नवजात शिशु अपने माताके स्तनोंकी ओर दृष्टि लगाये रहता है और पतिव्रता पत्नी अपने परदेश गये पतिके आनेकी बाट जोहती है, वैसे ही मैं तुम्हारी उस मधुर स्मृतिकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

नाथ! यदि वस्तुतः बात यही है, तो तुम फिर जो चाहो, करो। संसाररूपी भयंकर अग्निकी प्रचण्ड ज्वालामालासे निश्चय ही मेरे होश-हवाश गायब हो रहे हैं, चेतना लुप्त हो रही है। अधिक क्या, उधर देखनेपर, सोचनेपर दम घुटने-सा लगता है; पता नहीं चलता कि अगला श्वास आयेगा या नहीं। जान-अनजानमें मैंने आपके चरणोंकी शरण भी कभीसे ले ली है। फिर भी दया-सुधानिधे! आपको जो अच्छा लगे, आप जिसमें यह देखें कि इसीसे मेरा यह अविरत स्मरण करेगा, आप वही करें, अवश्य करें। मैं उन सारी विपत्तियों, परिस्थितियोंके लिये सर्वथा सर्वदा तैयार हूँ, तत्पर हूँ—

भवानलज्वालविलुप्तचेतनः

शरण्य तेऽङ्घ्रि शरणं भयादयाम्।

विभाव्य भूयोऽपि दयासुधाम्बुधे

विधेहि मे नाथ यथायथेच्छसि॥

(करुणा० २)

नाथ! शास्त्रों तथा संतोंसे जाना जाता है कि आपकी कृपा-सुधाके ये सौभाग्यशाली व्यक्ति पात्र होते हैं—एक तो खिन्न^२-दुखिया; दूसरे दीन;^३ तीसरे उपेक्षित—असहाय, जिनका संसारमें कोई सहायक न रह गया हो, जिनपर संसारके किसी भी जीवकी स्निग्ध दृष्टि न पड़ती हो; चौथे वे, जो सबोंका मोह छोड़कर आपकी शरण लेते हैं^४। जो

१-अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च। सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।५४)

२-'जिन्हि परम प्रिय खिन्न'

३-'दीनहित विरद पुरानहि गायो।' 'जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे।'

४-ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६५; स्कन्दपु० वैष्णव० वैशाखमाहा० १३।३६)

संसारकी सभी परिस्थितियोंमें शान्त तथा एकरस रहते हुए, उनसे अनाक्षिप्त रहकर नित्य निरन्तर श्रद्धापूर्वक आपके चरणोंमें लीन रहते हैं, वे भक्त तो आपको परमप्रिय होते हैं।^१ जिनका मन अत्यन्त निर्मल होता है, जो सर्वथा सभी प्राणियोंके साथ तथा आपके साथ निश्छल व्यवहार करते हैं; वे भी आपको तुरन्त प्राप्त कर लेते हैं; वे भी आपको बहुत ही प्रिय होते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

(रा०च०मा० ५।४४।५)

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई^२॥

और ज्ञानी भक्त तो आपको सर्वाधिक प्रिय होते हैं, एक प्रकारसे आपकी आत्मा ही होते हैं—

‘ग्यानी प्रभुहि बिसेष पिआरा।’

‘ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।’

(गीता ७।१८)

—और फिर धर्मात्मा ब्राह्मण, जो आपका आश्रित हो, वह भी आपको प्रिय है, आपका स्वरूप है—

ब्राह्मणो मामकी तनुः।

मम मूरति महिदेवमयी है।

प्रभो! देखता हूँ, मैं इनमेंसे एकाधिक हूँ। दीनता और खिन्नता तो जैसे मेरे बाँटमें ही आ गयी हैं, मैं उपेक्षित भी कम नहीं हूँ। संसारका स्वभाव ही यह है कि शरणमें आये हुएको लोग ठुकराते हैं। विशेषकर कलियुगमें तो प्रभो! भिखमंगों, दीनोंको मार-भगाकर अपना पिण्ड छुड़ानेमें ही लोग अपना कल्याण, अपनी बुद्धिमानी मानते हैं। फलतः नाथ! मैं जिनके ही शरण गया, जिनके ही सामने अपने दैन्यभावको प्रकटकर उनसे मैत्री करनेकी इच्छा की, उन्होंने ही तीव्र उपेक्षा की, जोरोंसे फटकारा। ब्राह्मण होकर अन्त्यजोंको भी अपनेसे श्रेष्ठ मानकर सद्व्यवहार किया। उन अन्त्यजोंने भी मुझे कुत्तेसे हीन समझकर बार-बार दुत्कारा। मैंने जहाँ ही हाथ फैलाया, वहींसे घोर निराशा मिली। पशु-पक्षियोंने भी स्निग्ध दृष्टि नहीं डाली, मनुष्योंको तो सामने पहुँचते ही उपद्रवरूप प्रतीत हुआ।

अनेक स्थानोंपर, अनेक दुर्गम स्थलोंपर केवल भोजनके लिये दौड़ा, पर कोई फल नहीं निकला। अपनी जाति, कुल तथा मनुष्यताका अभिमान छोड़कर सब प्रकारसे दूसरोंकी सेवा की, पर वह भी निष्फल गयी। दूसरोंके घर अपमानित होकर भोजन करना पड़ा, कौए-जैसा, सशंक होकर वहाँ भी बराबर डरता ही रहा (कि देखूँ कब भगाता है)। अपमानके तो, जो मृत्युसे भी बढ़कर है^३ मानो सागरमें ही डूब गया, फिर भी बड़ी शान्तिसे उसे निरन्तर सहता रहा। प्रायः इसी प्रकार सारी अवस्था बीत गयी, पर तृष्णा अब भी शान्त नहीं हुई। पता नहीं चलता कि अब कौन-सा दुर्दिन, दुर्गति देखनेको अवशेष है, जिसके कारण मैं इस मोहपाशसे अलग होकर कहीं निर्जन स्थलमें जाकर आपका नित्य-निरन्तर भजन-चिन्तन आरम्भ नहीं करता—

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं

त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।

भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्

तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि॥

(वैराग्यशतक ५)

दुष्टोंके वाग्बाणोंको निर्विकार चित्तसे सहते हुए उनकी सेवा की। अन्तर्हृदयके घाव और रुलाईको रोककर शून्य मनसे ऊपरसे हँसनेका नाटक किया। जिन लोगोंने महामूर्ख मानकर घृणासे मेरा उपहास किया, उन्हें भी चित्त रोककर मैंने अंजलि जोड़ी। अबतक तो यही दशा रही, पता नहीं किस पूर्ण न होनेवाली दुराशासे मैं इस प्रकारका नाच अबतक नाचता रहा और पता नहीं कबतक नाचूँगा—

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-

विगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा।

कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामङ्गलिरपि

त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम्॥

(वैराग्य० ६)

निश्चय ही यह सब हमारे प्राक्तन तथा इदंतन

१-तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते। श्रद्धाधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥ (गीता १२।१९-२०)

२-स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य तथाङ्गपाणेः। योऽमायया संततयानुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम्॥ (श्रीमद्भा० १।३।३८)

३-वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात्। प्राणनाशे क्षणं दुःखं मानभंगे दिने दिने॥ (चाणक्य १६।१६)

दुष्कर्मोंका ही परिणाम है। और जब इनके परिपाकका समय आया है, तब निरुपाय होकर आपके आगे क्रन्दन करने लग गया, चिल्ला-चिल्लाकर रोने लग गया हूँ। जो भी हो, अब तो मैं इस संसारके क्लेशरूपी अनन्त महासागरमें बड़े जोरोंसे डूब रहा हूँ—चिरकालसे डूब रहा हूँ; कहीं कोई भी वारापार नहीं दीखता। बस, हे निसर्ग-सुहृद्! हे आश्रितवत्सल! हे कृपासिन्धु! अब आप कृपया मेरा उद्धार कर लें। भगवन्! वस्तुतः आपकी कृपाका मैं अनुपम पात्र हूँ।

जो अपने सहित अशेष विश्वको भूलकर एकमात्र आपका एक या आधे मुहूर्त भी ध्यान करता है, श्रद्धा तथा तल्लीनतापूर्वक आपका स्मरण करता है, वह जिस गतिको; जिस सुख-शान्तिको प्राप्त होता है, उसे सभी महायज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं प्राप्त किया जा सकता—

एवं मुहूर्तमर्थं वा ध्यायेद् श्रद्धया हरिम्।

सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः॥

(अग्निपुराण ३७४। ६)

अत्यन्त पातकी व्यक्ति भी यदि एक क्षण आपका ध्यान कर लेता है तो वह पंक्तिपावनोको भी पावन करने योग्य बन जाता है^१। कृपानिधान! आपकी चिन्मयता तथा शक्त्यतिशयताके कारण आपका तनिक भी प्रेमपूर्वक किया गया ध्यान बड़ा ही मंगलमय होता है। आपके चरित्रके कीर्तन तथा श्रवणमें भी आपका ध्यान होता है। अतः आपका कथाकीर्तन भी महामंगलमय है। संतोंकी संगतिमें आपके मधुमय, कल्याणप्रद चरित्रका ही कीर्तन होता है, अमृतमय भगवच्चरित्र ही प्रवाहित होता रहता है^२। अतः उसे स्वर्ग तथा मोक्षसे भी अधिक सुखद कहा गया है^३। इन सबोंकी महिमामें आपका अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्यकिशोर, लावण्यमय, अमृतोपम श्रीविग्रह ही मूल

हेतु है। आपके वरद चरणोंके अनुरागामृतसिन्धुका एक शीकर (बूँद)—मात्र भी इस भयानक संसृतिदावाग्निको शान्त करनेके लिये पर्याप्त है^४। किंतु नाथ! क्या मैंने इनमेंसे कुछ भी किया है? निस्संदेह कुछ नहीं किया।

क्या तुम्हें सर्वेश्वर मानकर मैंने तनिक भी आदर दिया? तुम्हारी थोड़ी भी श्रद्धा-भक्ति की? क्या तुम विश्वेशकी आज्ञामय^५ 'श्रुति-स्मृति' की प्रतिष्ठापूर्वक उनमें कहे धर्मोंका भयसे कुछ भी अनुष्ठान किया? या नियमतः तुम्हारी तनिक भी सपर्या की? नहीं, मैंने तो तुम्हें एकमात्र अपने स्वार्थोंका साधन बना रखा है। नाथ! जब अपनी ओर देखता हूँ तो अपनेको केवल जघन्य अपराधोंका भंडार पाता हूँ। और अब तो पापमयी दृष्टि भी कुछ ऐसी मन्द पड़ गयी कि अपने अपराध भी नहीं दीखते। वस्तुतः मैं सर्वथा श्रान्त, निर्जीव, निर्बुद्धि हो गया हूँ तथा उत्तरोत्तर पतनकी ओर जा रहा हूँ। मुझसे कोई साधना होगी, इसकी आशा आप करें तो वह व्यर्थ—सी है, सचमुच मैं सभी प्रकार थककर, भय तथा दुःखसे अतिशय पीड़ित होकर वाणीमात्रसे आपके शरण हूँ—

थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुरयो।
अब रघुनाथ! सरन आयो जन भव भय बिकल डरयो॥

ऐसी दशामें अब क्या कहूँ—बस, मेरे सारे अपराधोंको आप क्षमा करें और अब कृपापूर्वक अपनायें—'लाद दे लदाय दे' का नियम सोचें; यही प्रार्थना है। 'सर्वतः श्रुतिमल्लोके' के नियमसे आपके कान, आँख, मन सर्वत्र हैं ही; इसलिये यह प्रार्थना लिखते, सोचते समय भी आप सब जान रहे हैं, इसमें तो संदेह ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि इस आशाजनक क्रियाके प्रेरक भी वस्तुतः आप तथा आपका मंगलमय संकल्प ही है।

१-(क) सर्वपापप्रसक्तोऽपि ध्यायेन्निमिषमच्युतम्। भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः॥ (बृहद्गोगियाज्ञ० ९। १८१)

(ख) नितान्तं कमलाकान्ते शान्तचित्तं निधाय यः। संशीलयेत्क्षणं नूनं कमला तत्र निश्चला॥ (काशीखंड २१। ५८)

२-तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति (श्रीमद्भा० ४। २९। ४१)

३-तुलयां लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥ (श्रीमद्भा० १। १८। १३; ४। ३०। ३८)

४-उदीर्णसंसारदवाशुशुक्षिणं क्षणेन निर्वाप्य परं च निर्वृतिम्। प्रयच्छति त्वच्चरणारुणाम्बुजद्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः॥ (आलवन्दारस्तोत्र ३२)

५-श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लंघय वर्तते। आज्ञाच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥ (वाधूलस्मृति १८९)

सत्संगतिसे लाभ और कुसंगतिसे हानि

(श्रीबजरसिंहजी)

जिसका परिवर्तन और नाश किसी भी अवस्थामें न हो, जो सदा विद्यमान रहता है, वह सत् है अर्थात् परमात्मा सत्यस्वरूप है, इसलिये हमें परमात्माके सान्निध्यमें ही रहना चाहिये। सत्पुरुष उन्हें कहते हैं, जो अपने हानि-लाभकी चिन्ता न करके, सदा दूसरोंका हित करते रहते हैं, उन्हें ही हम सत्पुरुष कहा करते हैं। इनके साथ रहकर या इनके चरित्रसे प्रेरणा प्राप्त करना ही, सत्संगति कहा जाता है। सत्संगतिकी महिमा महान् है, इसके प्रभावसे दुष्टात्मा भी श्रेष्ठ बन जाते हैं, पापी भी पुण्यात्मा बन जाते हैं, दुराचारी भी सदाचारी हो जाते हैं, सत्संगतिके प्रभावसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, उसके अन्दरके सारे कल्मष दूर हो जाते हैं, वह आनन्दकी अनुभूति करने लगता है और परहितकी बात सोचने लगता है। दूसरेकी पीड़ा उसकी पीड़ा हो जाती है।

सप्तर्षियोंकी संगतिसे वाल्मीकि डाकूसे आदिकवि बन गये, विद्योत्तमाकी संगतिसे महान् मूर्ख कालिदास भी महाकवि कालिदास बन गये, जिनकी विश्वके श्रेष्ठ कवियोंमें गिनती होती है। महात्मा गाँधीके प्रभावसे अनेकोंका जीवन बदल गया। गौतम बुद्ध और चैतन्य महाप्रभुने कितने ही अधम मनुष्योंका जीवन बदल दिया, गोस्वामी तुलसीदासजीने सत्संगतिकी प्रशंसा करते कहा है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५।४)

सत्संगतिमें जितने लाभ है, उनका वर्णन करना बहुत कठिन है, इसीलिये कहा भी गया है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं

सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति बुद्धिकी मूर्खताको हरती है, वाणीमें सत्यका संचार करती है, सम्मानकी वृद्धि करती है, और तीर्थ है।

पापको दूर करती है, चित्तको प्रसन्न करती है। दिशाओंमें कीर्ति फैलाती है। कहो—सत्संगति मनुष्योंके लिये क्या नहीं करती है?

सत्संगतिसे अनेक और भी फायदे हैं जो निम्न हैं।

सत्संगति अनादि कालसे मानवजातिका हित करती आयी है, थोड़े समयकी सत्संगतिने अनेकों मनुष्योंके जीवन-प्रवाहको ही बदल दिया है। सत्संगतिसे सबसे पहला लाभ होता है, चरित्र-निर्माणका। किशोरावस्थासे वृद्धावस्था-तक चरित्र-निर्माणके लिये सत्संगतिको बहुत ही आवश्यकता है, जब सत्संगतिसे हमारा चरित्र-निर्माण हो जायगा, तो हमारे सारे दुर्गुण दूर हो जायँगे। सद्गुणोंके प्रभावसे जीविका-उपार्जनमें तुरंत सफलता मिलने लगेगी, हमारे पास धन आने लगेगा तथा धनसे हम धार्मिक कृत्य कर सकेंगे। जैसे—गरीबों, असहायों, दिव्यांगोंकी मदद करना, राष्ट्रीय आपदाप्रबन्धनके कार्योंमें तन-मन-धनसे मदद करना। चिकित्सालय, धर्मशालाएँ बनवाना इत्यादि ऐसे अनेकों कार्य, सत्संगतिसे सहज सम्पन्न हो जाते हैं। ऐसे कार्योंको करनेसे हमें सुख, शान्ति और ईश्वरीय कृपाकी प्राप्ति होगी। ये सब सत्संगके प्रभावसे ही सम्भव है, सत्संगसे मानव सद्गुणी बनता है और सद्गुणी मनुष्यका सर्वत्र यश फैलने लगता है और सम्मान होने लगता है।

अन्तमें हम कह सकते हैं कि सत्संगसे जितने लाभ हैं, कुसंगतिसे उतनी ही हानियाँ हैं। अच्छा-भला आदमी भी दुष्टोंकी संगतिमें रहनेसे नीच तथा पापपूर्ण कर्म करते देखा गया है। इसलिये कहा भी गया है—

तुलसी संगति साधु की हरे और की ब्याधि।

ओछी संगति क्रूर की आठो पहर उपाधि॥

इसलिये सदैव सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये और सद्गुणी बनना चाहिये; क्योंकि यही मार्ग परमपिता परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक बन सकता है, इसी मार्गपर चलकर ही मनुष्य मनुष्यके काम आ सकता है; क्योंकि यही सबसे बड़ा धर्म और यही सबसे बड़ी पूजा, अर्चना और तीर्थ है।

अपने प्रति न्याय करो

(बहालीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

लोग कहते हैं—‘महाराज! हम क्या बतायें, हम तो बड़े दुनियादार हैं।’ मानो अपनेको दुनियादार कहकर बुराई करनेका सर्टिफिकेट आपको मिल चुका है। बहुतसे लोग कहते हैं—‘महाराज! क्या बतायें, हम तो गृहस्थ हैं।’

सोचो! गृहस्थके माने यह थोड़े ही है कि आप वह करें, जो आपको नहीं करना चाहिये। मेरा नम्र निवेदन है कि आपका वर्तमान तो सर्वांशमें निर्दोष है, फिर भी भूतकालमें आप जो भूल कर चुके हैं और उसका जो दृश्य आपमें अंकित है, उसके ही आधारपर आप ऐसा कहते हैं कि हममें लोभ है, हममें मोह है, हममें काम है, हममें क्रोध है। पर भूतकालमें की हुई भूलके प्रभावके अतिरिक्त इसका और कोई कारण नहीं है। नहीं तो, आप ही बताइये, इसमें कौन-सा हेतु है? अपने अनुभवके आधारपर ही ऐसा कहते हैं। आपने भूतमें जो कुछ किया है और जैसा भी किया है, वह आपसे छिपा नहीं है। वह आपके अनुभवमें है, आपकी जानकारीमें है, परंतु उसका पता आपको तब चलता है, जब आप आवश्यक कार्य पूरा करके थोड़ी देरके लिये शान्त होते हैं। उस समय आपके जीवनमें चिन्तनके रूपमें जो उत्पन्न होता है, वह क्या है?

महाराज! वह उसीका तो सूची-पत्र है, जो आप कर चुके हैं। वह क्या है? वह उस बातकी सूची है, जो आप भविष्यमें करना चाहते हैं। आप देखें, बड़े-से-बड़े विज्ञानवेत्ता इसपर विचार करें, दार्शनिक लोग विचार करें, साहित्यिक लोग विचार करें और यह सोचें कि जब आप थोड़ी देरके लिये श्रमरहित होते हैं, शान्त होते हैं, तब आप अपनेमें क्या पाते हैं? तब उसमें आगे और पीछेका चिन्तन ही तो पाते हैं। और वह चिन्तन होता है उसका, जो स्वरूपसे उस समय मौजूद नहीं है, जो कर चुके

हैं, उसका चिन्तन, जो भविष्यमें करना चाहते हैं, उसका चिन्तन। तो वर्तमानमें जो नहीं है, उसका चिन्तन आप अपनेमें पाते हैं, न चाहते हुए भी पाते हैं और न करते हुए भी पाते हैं; और जब आप अपने उस चित्रको देखते हैं, तब भयभीत होकर घबराने लगते हैं और निन्दा करने लगते हैं अपने मनकी। कहते हैं—‘मन हमारा बड़ा खराब है।’ ऐसा कहना उसीके समान है, जैसे यदि कोई दर्पणमें जाकर अपना चित्र देखे और उसे देखकर खड़ा-खड़ा दर्पणको गाली दे—‘यह दर्पण बड़ा खराब है।’ उसके ऐसे व्यवहारपर आप यही तो कहेंगे कि यह पागल हो गया है। क्या इस प्रकारके पागलपनसे हम बचे हैं? आज कितने साधक हैं, जो यह नहीं कहते कि हमारा मन बड़ा खरा है? और, महाराज! कहतेभर ही नहीं, अपने कथनकी पुष्टिमें ऐसे-ऐसे प्रमाण देकर कहते हैं कि हमारे जैसा बेपढ़ा व्यक्ति तो उन्हें सुनकर डर ही जाय। बड़े-बड़े आदमियोंके नाम ले-लेकर डराते-धमकाते हैं। लेकिन आप जानते हैं कि शास्त्र माने दर्शन और दर्शनका अर्थ आपके अनुभवसे है और जिन शास्त्रोंको आप शास्त्रकी संज्ञा देते हैं, उनमें ऐसी बातें होती हैं, जिनमें किसी दशा-विशेषका वर्णन पाया जाता है और जिनको आप भी जानते हैं, शास्त्रमें पूर्व पक्ष होता है और उसमें उत्तर पक्ष भी होता है। आप भी अपनेमें जब आगे-पीछेका व्यर्थ चिन्तन देखते हैं, तब यही कहते हैं कि हमारा मन बड़ा चंचल है। इसी प्रकारकी दशाओंका वर्णन शास्त्रमें मिलता है, लेकिन ऐसी दशाओंको सिद्धान्तरूपसे स्वीकार करना, क्या युक्ति-युक्त होगा? क्या उन्हें निर्णयात्मक सिद्धान्त माना जा सकता है? क्या उन्हें अटल सत्य या निर्विवाद निर्णयकी संज्ञा दी जा सकती है? कदापि नहीं। उन्हें निर्णायक सत्यके रूपमें मान लेनेमें जीवनके

सत्यके साथ एकता नहीं होगी। क्योंकि दशा-विशेषके चित्रण और अविचल सिद्धान्तमें अन्तर रहना स्वाभाविक है। तो आप जब अपनी इस दशासे परिचित होते हैं, तब आपको एक सुनहरा अवसर मिलता है, इस बातके लिये कि आप भूतकालमें जो कर चुके थे, उसपर अपने ही द्वारा अपने सम्बन्धमें विचार कर सकें। यह मानव-मात्रका अपना नित्यकर्म है कि जब उसे अपने भूतकालके चित्रका दर्शन हो, वह दिखायी दे, तब वह उसपर विचार करे कि इसमें मैंने ऐसी कौन-सी बातें की हैं, जो नहीं करनी चाहिये थीं। यदि आपने उसपर विचार कर लिया और न करनेवाली बातोंको पुनः न करनेका निर्णय कर लिया, तो सच मानिये, आप वर्तमानमें उतने ही निर्दोष हैं, जितने निर्दोष उस भूलको करनेसे पूर्व थे। क्यों निर्दोष हैं? इसलिये निर्दोष हैं कि यह न्यायके अनुरूप है। न्यायका सबसे पहला अंग है कि हम अपनी भूलसे परिचित हो जायँ, अपराधी अपने अपराधको जान ले, दोषी अपने दोषको स्वीकार कर ले। यह न्यायका पहला अंग है। दूसरा अंग है कि दोषी उस दोषजनित प्रवृत्तिके कारण दुखी हो जाय, व्यथित हो जाय, पीड़ित हो जाय। तीसरा अंग है कि उसके न दोहरानेका निर्णय कर ले। आप पूछ सकते हैं कि इससे लाभ क्या होगा? गम्भीरतासे विचार करें। जिस समय आप अपने दोषको जानेंगे, दोष आपसे भिन्न होगा, क्योंकि जो जाननेमें आता है, वह जाननेवालेसे भिन्न होता है। फिर जिस समय आप अपनी भूलसे पीड़ित होंगे, भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश होगा और जब भूलजनित सुख-लोलुपताका नाश हो जायगा, तब भूल स्वतः पुनः उत्पन्न नहीं होगी और जब भूल स्वतः उत्पन्न नहीं होगी, तब आपकी निर्दोषता सुरक्षित रहेगी। इस प्रकारका न्याय अगर आप अपने साथ करना सीख जायँ तो आप अपने शासक हो गये। यह है, मानवकी अपनी राष्ट्रीयता, यह है मानव-जीवनकी राष्ट्रीयता।

मानव अपने प्रति न्याय करके स्वयं राष्ट्र हो सकता है। राष्ट्र माने क्या? राष्ट्र किसे कहते हैं? जो प्रजाके हृदयपर राज्य करे, वह राष्ट्र। जो प्रजा कानूनी चोरी करे, उसे प्रजा नहीं कहते। ऐसा राष्ट्र राष्ट्र कहलानेके लायक नहीं है, जो ऐसे अनर्गल कानून बनाये, जिनका ईमानदारीसे कोई पालन ही न कर सके। आप स्वयं सोचिये, इन्कमटैक्स डिपार्टमेण्टके रहते हुए चुनौती है—किसी भी देशमें देखें—ईमानदारीका होना क्या सम्भव है? बिलकुल गलत बात। क्योंकि व्यक्तिगत श्रमके महत्त्वका आप आदर ही नहीं करना चाहते। अरे भाई! राष्ट्रको सम्पत्ति चाहिये तो सम्मान देकर उसे ले सकते हो, ईमानदार मानकर ले सकते हो, परंतु आप तो पहले प्रजाको बेईमान बनाते हो और फिर सम्पत्तिको बलपूर्वक छीनते हो। इसका नतीजा क्या होता है? जैसे-जैसे गलत कानून बनते हैं, वैसे-ही-वैसे इन्कमटैक्स एक्टपर वकील लोग ऐसी-ऐसी चालें सुझाते हैं महाराज! कि जिन्हें न्यायाधीश तो समझ नहीं पाते और इस प्रकारके कानून बिलकुल निरर्थक सिद्ध होते जाते हैं। यह केवल एक मोटा उदाहरण है और मेरा यह विषय भी नहीं है। यह तो केवल उदाहरणमात्र है।

जबतक मानव-समाज अपने साथ अपने-आप न्याय करना नहीं सीखेगा, राष्ट्रीयतासे बहुत दूर रहेगा। राष्ट्रीयताके गीत चाहे भले गाता रहे, राष्ट्रीयताके नामपर व्यक्तिगत पूजा चाहे भले ही कराता रहे, परंतु राष्ट्रीयता क्या है? इस रहस्यको वह जान नहीं सकता। इसलिये 'हे मानव! मानव होनेके नाते तेरे जीवनमें जो न्यायका तत्त्व है, उस न्यायका तू उपयोग अवश्य कर, परंतु उस न्यायका उपयोग तू अपनेपर ही कर। प्यारे! दूसरेपर मत कर। औरोंपर क्षमाका ही उपयोग कर, प्रेमका उपयोग कर। अपने प्रति तो न्यायका ही उपयोग कर।'।

[प्रेषिका—साध्वी सुश्री अर्पिताजी]

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❖ कोटा क्षेत्रमें एक पलाशका वन था, जिसमें एक झोपड़ीमें श्रीहरेराम बाबाने छः महीनेतक भजन किया। वहाँ एक किशोर बालक उनकी सेवामें आ जाता था। निकटके गाँववालोंने वहाँ आकर कुछ समय रहनेकी प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल ३ बजे प्रस्थान करनेकी बात सेवकको भी बता दी, जिसने समयपर आनेका आश्वासन दिया। उस रात्रिको १ बजे ही एक प्रेत उस सेवक बालकका रूप लेकर उपस्थित हो गया। महाराजजीने समझा समय हो गया है, अतः तैयार होकर चल पड़े। मार्गमें उन्हें वह सेवकरूपी प्रेत बहुत लम्बी आकृतिमें दिखायी दिया। तब उन्होंने उससे सारी बात पूछी। उसने बताया कि महाराजकी कुटियाके निकटस्थ पेड़पर उसका आवास है। महाराजके सान्निध्यमें उसे सुख प्रतीत होता था। उसने अपने उद्धारहेतु प्रार्थना की और बताया कि जंगलमें अमुक स्थानपर चाँदीके रुपयोंसे भरा घड़ा जमीनमें है, जिसे निकालकर उसके श्राद्ध आदिमें उपयोग कर लिया जाय। महाराजजी वहीं मार्गसे वापस अपने स्थानको आ गये और उस प्रेतके उद्धारहेतु भागवतपाठ-श्राद्धादिकी व्यवस्था करायी। महाराजजीने बादमें बताया कि मैंने स्वयं उस प्रेतको विमानमें जाते देखा।

❖ ऐसी ही एक घटना मुण्डारा गाँवकी भी है, जहाँ बाबाको एक पुराने मकानमें उतार दिया गया। वहाँ रातमें भूतनीका प्रकोप था। बाबाने उसका उपद्रव देखा और पहचान लिया कि वह एक ब्राह्मणी थी, जो अपने दुश्चरित्रके कारण दुर्गतिको प्राप्त हो गयी थी। बाबाने पूछा कि वह अकेली है या अन्य भी उसके साथ हैं। उसने बताया कि उसे लेकर १५ भूत-प्रेत वहाँ हैं। उसने बाबासे उद्धारकी प्रार्थना की और बताया कि शिवपुराणकी कथासे उन सबका उद्धार होगा, जिसे बाबा आयोजित कर दें। उसके बाद वह गाँवके मुखियाकी पत्नीपर जा चढ़ी और उससे शिवपुराणकी कथा करानेका वचन लेकर छोड़ा। वहाँ बादमें भक्तमालीजी महाराजके द्वारा उन प्रेतोंके उद्धारहेतु शिवपुराणकी कथा करायी गयी,

जिससे उन सबका कल्याण हुआ। यह सन्तोंकी परदुःखकातरताका उदाहरण है।

❖ वृन्दावनके पण्डित राजवंशीजी महाराज बिहारमें श्रीकरपात्रीजीके द्वारा आयोजित एक यज्ञमें दुर्गासप्तशतीका पारायण कर रहे थे। उसी समय उनकी नेत्र-ज्योति अकस्मात् लुप्त हो गयी। उन्हें कुछ भी दीखना बन्द हो गया। स्मरणबलसे पाठ पूरा करके वे एक शिष्यका सहारा लेकर कुटीमें चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अन्य कोई प्रयत्न नहीं करके पूरी रात वेदोक्त चाक्षुषी-विद्याका पारायण किया। प्रातःकाल भगवान् भास्करकी अनुकम्पासे उन्हें पूर्ववत् नेत्रज्योति प्राप्त हो गयी और वे पूर्ववत् अनुष्ठानमें प्रवृत्त हो गये। यह शास्त्र-निष्ठाका प्रभाव है, जो प्राप्त संकटमें धैर्यपूर्वक डटे रहनेकी शक्ति प्रदान करती है।

❖ उदयपुर राजघरानेकी घटना है। राणाजी नित्य चारभुजानाथके मन्दिरमें दर्शनहेतु आते थे। एक दिन कुछ विलम्ब हो गया, इसलिये शयन-आरतीके बाद पथारे। वृद्ध पुजारीने बताया कि ठाकुरजीका शयन हो चुका है। उसने वही माला प्रसादरूपमें राणाजीको दे दी, जिसे उसने आरतीके बाद स्वयं धारण कर लिया था। राणाजीको उस मालामें पुजारीका एक सफेद बाल चिपका दीखा। उन्होंने कुछ रुष्ट होकर पूछा कि ठाकुरजी बूढ़े हो गये क्या? उनके बाल सफेद हो गये क्या? और घबराहटमें पुजारीजीके मुँहसे 'हाँ' निकल गया। राणाजी प्रातःकाल आनेकी बात कहकर चले गये। रात्रिमें पुजारीने अपनी गलतीका पश्चात्ताप करते हुए ठाकुरजीसे विह्वल भावमें अर्ज करी कि आपकी सेवा-पूजा न छूटे। प्रातः जब राणाजी दर्शनहेतु आये तो उन्हें ठाकुरजीके बाल सफेद दीखे। सच्चाई जाननेहेतु उन्होंने भीतर जाकर एक बाल पकड़कर खींचा तो उसमें रक्तकी बूँद आ गयी और ठाकुरजीके मुखपर पीड़ाका भाव उभर आया। तत्काल आकाशवाणी हुई कि आज के बाद उदयपुरकी गद्दीपर बैठा कोई राणा चारभुजानाथके दर्शन नहीं कर सकेगा। ऐसा ही हुआ और इस परम्पराका निर्वाह हर उत्तराधिकारी राणा आजतक करते हुए राजतिलकके बाद मन्दिरमें दर्शनहेतु प्रवेश नहीं करते।—'प्रेम'

वास्तविक आनन्दके लिये क्या करें ?

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

मनुष्यका मूल स्वभाव है प्रसन्नता अथवा आनन्द। हम सब हर पल-हर घड़ी आनन्दमें ही जीना चाहते हैं। जीना भी चाहिये। इसीलिये तो हर पल आनन्दकी खोजमें लगे रहते हैं। आनन्दप्राप्तिके लिये न जाने क्या-क्या करते रहते हैं? अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, घरको भी खूब सजाकर रखते हैं; लेकिन बात बनती नहीं। आनन्द पानेके लिये हम जितनी अधिक भाग-दौड़ करते हैं, छटपटाते हैं, आनन्द उतना ही हमसे दूर भागता है। फिर कैसे प्राप्त करें आनन्द? जीवनको कैसे खुशियोंसे भरें? आनन्दका सीधा सम्बन्ध है सहजता और सरलतासे। हम जितने सहज और सरल होते हैं, उतने ही अधिक आनन्दमें होते हैं; लेकिन क्या आज हमारा जीवन सहज और सरल रह गया है? शायद नहीं। जीवनके हर क्षेत्रमें भागमभाग। एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी होड़। जन्मसे लेकर मृत्युतक प्रतियोगिता, विश्लेषण और दूसरोंसे तुलना। ऐसेमें क्या आनन्द प्राप्त किया जा सकता है? शायद नहीं। फिर आनन्दको कैसे प्राप्त करें? उसे कहाँ खोजें?

प्रश्न उठता है कि हम आनन्दको कहाँ खोजते हैं? आज हम बाहरकी दुनियामें खुशी तलाशते हैं। चीजोंमें सुख तलाशते हैं। धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठामें आनन्द खोजते हैं। हमारी खुशी, हमारा आनन्द हमारी मनचाही वस्तु या घटनापर आधारित है। मनचाही वस्तु पा लेते हैं या मनचाही घटना घटित हो जाती है तो हम खुश वरना हमारे दुःखोंकी सीमा नहीं रहती। हमारा आनन्द किसी सहारेपर टिका रहता है। जैसे ही वह सहारा या आधार खिसकता है, हम आनन्दरहित हो जाते हैं। ऐसा आनन्द वास्तविक आनन्द नहीं हो सकता। धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, आज्ञाकारी बच्चे, मनचाहे भोजन-वस्त्र, युवावस्था-जैसी शारीरिक शक्ति एवं अन्य अपरिमित भौतिक सुख-सुविधाएँ न होनेपर भी जहाँ मनमें कष्ट न हो और जो उपलब्ध हो उसीमें सन्तुष्टिका भाव बना रहे, उसे ही वास्तविक आनन्द कहा जा सकता है।

तो फिर ये वास्तविक आनन्द कैसे प्राप्त हो? सच्ची खुशी या आनन्द पाना है तो उसे चीजों और घटनाओंसे जोड़ना छोड़ देना होगा। खुशीको बाहर तलाश करनेकी बजाय उसे अन्दर खोजना होगा। आनन्दका वास्तविक स्रोत हमारे भीतर है। हमारा मन तथा हमारे मनके भाव ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। यदि मन आनन्दसे भरा है तो बाहरी संसारमें चीजोंकी कमी भी हमारे आनन्दमें कमी नहीं कर सकती। सकारात्मक विचारोंमें ओत-प्रोत मन ही सच्चा आनन्द प्रदान करनेमें सक्षम है। अब धर्मकी इसमें क्या भूमिका हो सकती है? इसके लिये धर्मके वास्तविक स्वरूपको भी जानना चाहिये। धर्म क्या है? धर्म और कुछ नहीं केवल उन अच्छे गुणोंका समुच्चय है, जो सकारात्मक ढंगसे जीवन जीनेमें सहायक होते हैं। सकारात्मक ढंगसे जीवन जीना ही आनन्ददायक हो सकता है, नकारात्मक ढंगसे नहीं। इसीलिये जीवनको अच्छी तरह जीनेके लिये धर्ममें प्रवृत्त होनेकी आवश्यकता है। धर्मके तीन प्रमुख तत्त्व या अंग माने गये हैं—

१. अध्यात्म अथवा दर्शन या नैतिकता,
२. प्रतीक,
३. कर्मकाण्ड।

अध्यात्म या दर्शन धर्मका आन्तरिक तत्त्व है, जबकि प्रतीक और कर्मकाण्ड बाह्य तत्त्व हैं। आन्तरिक तत्त्व ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। आन्तरिक तत्त्व ही हमारा साध्य होना चाहिये; क्योंकि बाह्य तत्त्व तो साधनमात्र है। बाह्य उसकी प्राप्तिमें सहायक हो सकते हैं। धर्मका आन्तरिक तत्त्व जिसे दर्शन या नैतिकता अथवा अध्यात्म कहते हैं, मेरे विचारसे वह हमारा आचरण ही है—धर्मसम्मत आचरण। यह मनुष्यके विचारसे सम्बन्धित है। विचारका अर्थ है सात्त्विक भाव या सकारात्मक चिन्तनसे उत्पन्न आचरण। ये क्रियाएँ नहीं हैं अतः इन्हें दिखाया नहीं जा सकता। कार्य हम विचारके वशीभूत होकर करते हैं; अतः जैसा

धर्म होगा, वैसा ही कार्य करेंगे।

आज हम धर्मके आन्तरिक तत्त्वको भूल-से गये हैं। महाभारतमें एक प्रसंग है—यक्ष-प्रश्न। यक्षका रूप धारण किये धर्म युधिष्ठिरसे कुछ प्रश्न पूछते हैं और युधिष्ठिर अत्यन्त समझदारीसे उनके उत्तर देते हैं। सभी प्रश्न न केवल महत्त्वपूर्ण और जानने-समझनेयोग्य हैं, अपितु वर्तमान सन्दर्भोंमें भी उनकी प्रासंगिकता कम नहीं हुई है। इसीसे यक्ष-प्रश्न आज एक मुहावरा बन गया है। यक्षने युधिष्ठिरसे एक प्रश्न पूछा था कि मनुष्यका साथ कौन देता है? युधिष्ठिरने जवाब दिया कि धैर्य ही मनुष्यका साथी होता है। यदि आजके परिप्रेक्ष्यमें देखें तो स्पष्ट है कि धैर्य ही मनुष्यका वास्तविक एवं उत्तम साथी है। धैर्यके अभावमें, धैर्यसे रहित मनुष्य सरलतासे जीवन-यापन नहीं कर सकता।

आज हमारे समक्ष जितनी भी समस्याएँ हैं, वे सब धैर्यका पालन न करनेके कारण ही हैं। आज राजनीतिमें जो मूल्यविहीनता देखनेमें आ रही है, वह भी धैर्य अथवा धर्मके अभावके कारण ही है। जीवन जीनेकी जो कला है, वह धर्म ही है। धर्मके अभावमें उत्कृष्ट जीवन तो दूर सामान्य जीवन जीना भी असम्भव है। धैर्य जीवन जीनेकी कला और धर्मका लक्षण है। धर्मके दस लक्षण बतलाये गये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये धर्मके दस लक्षण हैं। धैर्यको यहाँ पहले स्थानपर रखा गया है। वास्तवमें जिस व्यक्तिमें धैर्य नहीं है, वह धार्मिक नहीं हो सकता और जिस धर्ममें धैर्य अथवा सहिष्णुताका अभाव है, वह धर्म ही नहीं है। जहाँ धर्मके नामपर तलवारें खिंची रहती हैं, न जाने वह कैसे धर्म है?

हमारे रोजमर्राके जीवनमें भी तो कमोबेश यही हो रहा है। किसी न किसी तरहकी तलवार हमारे सरपर लटकी ही रहती है। हम हर क्षण किसी-न-किसी प्रकारके तनावसे ग्रस्त रहते हैं। इसका प्रमुख कारण धैर्यकी कमी ही तो है। हम सब कुछ आज और इसी

समय हासिल कर लेना चाहते हैं। हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं तो क्या हुआ? जो चाहिये किसी भी सही-गलत तरीकेसे हासिल कर लेते हैं। धैर्यके अभावमें हम अनैतिक ही नहीं, अपराधी बनते जा रहे हैं। किसी वस्तुको तत्क्षण पानेके लिये झूठ बोलनेसे परहेज नहीं करते। धैर्य हो तो झूठ नहीं बोलेंगे। सत्यका पालन करेंगे। सत्य भी धर्मका ही एक लक्षण है। धैर्य इतना चुक गया है कि किसी कार्यको करनेसे पूर्व परिणामके बारेमें सोचतेतक नहीं। धैर्य हो तो बुरे कार्य करने अथवा बुरे समयको कोसनेकी अपेक्षा अच्छे दिनोंकी प्रतीक्षा करेंगे। धैर्यके अभावमें बुरे कामका बुरा परिणाम भुगतना ही पड़ता है।

युधिष्ठिरके अन्य चारों भाइयोंमें धैर्य नहीं था, अतः यक्षके प्रश्नोंकी उपेक्षाकर उस मायावी सरोवरका जल पी लिया और अचेत होकर गिर पड़े। युधिष्ठिरमें धैर्य था, अतः यक्षकी उपेक्षा करनेकी बजाय ध्यानपूर्वक उसकी बात सुनी और उसके प्रश्नोंके धर्मसम्मत उत्तर देकर न केवल यक्षका आशीर्वाद प्राप्त किया, अपितु अपने चारों मृतप्राय भाइयोंको भी जीवित करवानेमें सफल हुए। आज हममें पेय-अपेय, खाद्य-अखाद्य, दर्शनीय-अदर्शनीय, वचनीय-अवचनीय तथा श्रवणीय-अश्रवणीयमें अन्तर्भेद करनेका विवेक और धैर्य नहीं रहा, तभी हमारी हर क्षेत्रमें दुर्गति हो रही है। न वाणीके संयमका धैर्य है और न जिह्वाके संयमका धैर्य। हमारा स्वास्थ्य हो, आपसी सम्बन्ध हो, व्यापार अथवा सेवा हो—सब जगह धैर्यका अभाव देखनेको मिलता है। यही सब रोगोंके मूलमें है।

धैर्य नहीं तो क्षमा करना भी सम्भव नहीं है। धैर्य नहीं तो दम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्मके इन अन्य सभी लक्षणोंका विकास हो ही नहीं सकता। धैर्यके अभावमें न तो मनपर नियन्त्रण करना ही सम्भव है और न मनका शुभ संकल्पमय होना ही सम्भव है। अतः वास्तविक आनन्दके लिये धैर्यपूर्वक धर्मसम्मत प्रयास ही वरेण्य है।

प्राणायामका मूल उद्देश्य

(श्रीश्रीरिष शान्तारामजी कवडे)

‘योगविद्या’ अत्यन्त प्राचीन विद्या है; वह कोई आजकी नहीं है। हमारे सुप्रसिद्ध वैदिक-षड्दर्शनोंमें तो ‘योगदर्शन’ एक स्वतन्त्र दर्शन है ही। योगका उल्लेख, योगका आरम्भ वैसे तो वेदोंसे ही मिलता है। अर्थात् योगका विज्ञान, योगका शास्त्र आजका नहीं है। हालहीमें किसीने इसे खोजा नहीं है, अपितु यह शास्त्र तो प्राचीन कालसे ही परम्पराद्वारा चला आ रहा है। यह हमारी संस्कृति है, हमारा एक शास्त्र है।

अपने आपको ‘योगी’ एवं योगशास्त्रके ज्ञाता कहलानेवाले आजकलके अधिकांश प्रचारक जो प्रायः प्राणायामका उपयोग रोगनिवारणके लिये करते हैं, वे भी कहीं-न-कहीं इस बातको बड़ी ईमानदारीसे मानते हैं कि प्राचीन ग्रन्थोंमें भले ही प्राणायामका रोगनिवारणके रूपमें उल्लेख आता है, परंतु किसी भी ग्रन्थकारने यह कभी नहीं कहा कि केवल रोगनिवारणके लिये प्राणायामका उपयोग करें।

इस सन्दर्भमें मुझे अपने परम पूज्य सद्गुरुद्वारा कहे एक बड़े ही मार्मिक दृष्टान्तका स्मरण हो रहा है। नारियलके पेड़को तो हम सभी जानते हैं। कोंकणमें तो उसे कल्पवृक्ष ही कहा जाता है; क्योंकि नारियलसे अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उसका कोई भी हिस्सा निरुपयोगी नहीं होता। लेकिन क्या कभी किसीने सुना है कि मात्र झाड़ूकी सामग्री पानेके लिये कोई नारियलका बाग लगाता है? वह सभी फलोंको फेंक देता है और मात्र सूखी पत्रवल्लियोंको रख लेता है? लेकिन योगशास्त्रको लेकर आज कुछ ऐसा ही दिखायी देता है। क्या योगशास्त्रका उपयोग मुख्य रूपसे रोगनिवारणके लिये वास्तवमें किया जाना चाहिये? प्रज्ञाचक्षु संत श्रीगुलाबरावजी महाराज तो अपने ग्रन्थ ‘साधुबोध’ में ‘योगाभ्यास साध लेनेके बाद भी नास्तिक कौन रहता है?’ इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि ‘वह, जो अपने पूरे मानसिक बलको शारीरिक रोगके निवारणमें ही खर्च कर देता है; क्योंकि अपने आगे रखी थालीको छोड़कर दूसरे बच्चेकी

थालीको अपनी ओर खींचनेवाले बेटेको जैसे एक माँ दण्ड देती है, इसी तरह औषधिमें परमेश्वरी शक्तिके होते हुए भी जो रोग-निवारणहेतु योगशक्तिका उपयोग करता है, वह भगवान्को प्रिय नहीं होता।’

परम्परानुसार योगदर्शनके प्रणेता महर्षि पतंजलिको भगवान् श्रीशेषका अवतार माना जाता है। अठारहवीं सदीके, पण्डित श्रीरामभद्र दीक्षितजीके ‘पतंजलिचरित’ नामक ग्रन्थमें महर्षि पतंजलिकी स्तुतिमें एक श्लोक ऐसा आता है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

वाणीमें अशुद्धता न रहे, वाणी शुद्ध हो जाय, शब्दोंका मर्म समझमें आ सके, शब्दोंका सामर्थ्य समझमें आ सके, इसलिये महर्षि पतंजलिने शेषरूप अर्थात् अपने मूलरूपमें व्याकरणशास्त्रकी रचना की। पतंजलिके नामसे एक व्याकरण महाभाष्य भी विख्यात है। इसी तरह, मनका मल दूर होने और आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये महर्षि पतंजलिने योगशास्त्रकी रचना की। उत्तम आरोग्य, निर्दोष शरीर और व्याधियोंको दूर करनेके लिये उन्होंने ही चरकाचार्यका अवतार धारणकर वैद्यकशास्त्रमें ‘चरकसंहिता’ का निर्माण किया।

यहाँ यह विचार बड़ा स्वाभाविक है कि यदि महर्षि पतंजलिने रोगनिवारणका मार्ग बतानेके लिये ही योगशास्त्रकी रचना की होती, तो फिर उन्हें अलगसे ‘चरकसंहिता’ की रचना क्यों करनी पड़ती? इसका अर्थ है कि ‘वैद्यकशास्त्र’ और ‘योगशास्त्र’ दोनोंके प्रयोजन मूलतः भिन्न हैं। वैद्यकशास्त्रका कहना यह है कि रोगकी चिकित्सा करते समय कुछ तत्त्वोंका पालन करना जरूरी है। वैद्योंको सबसे पहले यह देखना चाहिये कि रोग मानसिक स्तरपर है या शारीरिक स्तरपर है? यदि रोग शारीरिक स्तरका हुआ तो उसे औषधियोंसे

दूर करें। यदि औषधियोंसे वह रोग दूर नहीं हुआ तो शल्यक्रियाद्वारा दूर करें। उससे भी यदि वह ठीक नहीं हुआ तो मन्त्र-तन्त्र-दैवतशास्त्र अथवा मनोबलका प्रयोग करें। इतना करनेपर भी यदि रोग दूर नहीं हुआ तो महात्माओंका सत्संग करें, महात्माओंकी सेवा करें अथवा सत्त्वगुणवृद्धिहेतु शास्त्रोक्त यत्न करने चाहिये। रोग यदि मानसिक है, अथवा मानसिक स्तरके हैं, तो विशिष्ट औषधिद्वारा अथवा तन्त्र-मन्त्रसे ठीक हो जाते हैं, अन्यथा महापुरुषोंके आशीर्वादसे ठीक हो जाते हैं। शारीरिक रोग 'व्याधि' कहलाते हैं और मनके रोग 'आधि' कहलाते हैं। ऐसे 'आधि' और 'व्याधि' दोनों उपर्युक्त क्रमसे दूर होते रहते हैं।

हमारा भौतिक शरीर पंच महाभूतोंसे बना है, उन महाभूतोंसे ही तीन दोष उत्पन्न हुए हैं। आकाश और वायुसे वातदोष, अग्निसे पित्तदोष तथा अग्नि और जलसे कफदोषका निर्माण होता है। इन तीनों दोषोंके परस्पर मिश्रणोंसे ही नाना रोग उत्पन्न होते हैं और प्रमादपूर्ण आहार-विहारोंके कारण ही ये दोष बिगड़ते रहते हैं।

इनमेंसे प्रत्येक दोषकी दो-दो गतियाँ होती हैं—(१) संचय—अर्थात् दोषोंका अपने निर्धारितस्थानोंपर संग्रह होना और (२) प्रकोप—अर्थात् दोषोंमें वृद्धि होनेके कारण, उनका अपने स्थानको छोड़ना। दोषोंकी ये दो गतियाँ ही आधि-व्याधि उत्पन्न करती रहती हैं।

इस तरह रोगोंके भी तीन प्रकार होते हैं। 'कर्मज' यानी कर्मोंके कारण उत्पन्न होनेवाले रोग, 'दोषज' यानी दोषोंके कारण उत्पन्न होनेवाले रोग और 'उभयज' अर्थात् कर्म एवं दोष दोनोंके कारण उत्पन्न होनेवाले रोग। इनमेंसे कर्मज रोग जप-तप-मन्त्रद्वारा ठीक हो जाते हैं, दोषज रोग औषधियोंसे ठीक हो जाते हैं, लेकिन उभयज रोगोंके लिये औषधियोंके साथ-साथ जप-तप-मन्त्रकी भी आवश्यकता होती है।

रोगोंके 'शारीरिक', 'मानसिक', 'आगन्तुक' और 'स्वाभाविक' ऐसे भी चार प्रकार होते हैं। शारीरिकका अर्थ है वातादि दोषोंसे शरीरमें होनेवाले रोग, मानसिकका अर्थ है रज-तमके कारण मनको होनेवाले रोग, आगन्तुकका अर्थ है अभिघातादि, दैवीय अपघातादिसे होनेवाले रोग

और स्वाभाविकका अर्थ है निद्रा, भूख, प्यास आदि नैसर्गिक, शारीरिक और मानसिक अनुभव।

प्राचीनकालमें हमारे यहाँ चिकित्साका 'सूर्यविज्ञान' नामक एक दिव्य शास्त्र प्रचलित था। उसी सूर्यविज्ञानमें 'प्राणचिकित्सा' नामक एक स्वतंत्र विभाग समाविष्ट था। प्राणचिकित्साका अर्थ है—अपने विशुद्ध प्राणोंकी सहायतासे दूसरेका रोग दूर करना। लेकिन ऐसी प्राणचिकित्सा कौन कर सकता है? इसके लिये शास्त्रकारोंने अधिकार भी स्पष्ट कर रखा था। इस सन्दर्भमें ऋषियोंका ऐसा कहना था कि—'जिनके अपने अंगरस अर्थात् प्राण विशुद्ध हो चुके हों, जिनका मन भगवदाकार हो चुका हो, जो सदैव परमात्माके चिन्तनमें निमग्न रहते हैं, जिन्हें किसी-से किसी तरहकी अपेक्षाएँ नहीं हैं; ऐसे निरपेक्ष, निष्काम, आत्मसंस्थ महात्माओंको और वह भी अत्यावश्यक होनेपर ही, यह 'प्राणचिकित्सा' करनी चाहिये।

आजके समयमें इसी प्राचीन प्राणचिकित्साके तीन व्यावहारिक एवं परिवर्तित स्थूलरूप नियतिके क्रममें पुनः दुनियाके सामने आये हैं। उनमेंसे एक विभाग है, 'अक्युप्रेशर' और 'अक्युपंकवर' का। दूसरा विभाग 'प्राणिक हीलिंग' के नामसे प्रचलित हो गया है। 'रेकी' आदि भी इसी विभागमें आते हैं और तीसरा विभाग 'यौगिक चिकित्सा' (प्राणायाम, मुद्रादि प्रकारोंसे होनेवाली चिकित्सा) के नामसे जाना जाता है।

आज जिसे हम 'अक्युप्रेशर' अथवा 'अक्युपंकवर' के नामसे जानते हैं, वह शास्त्र पहले सूर्यविज्ञानकी प्राणचिकित्सा में 'मर्मविज्ञान' के नामसे प्रसिद्ध था। ऐसे लोग जो अन्तःकरणसे शुद्ध नहीं, जिनके प्राण विशुद्ध नहीं हैं, जिन्हें श्रीभगवान्का स्मरण नहीं होता, किंतु जो किसीका रोग ठीक करनेकी उत्कट इच्छा रखते हैं; ऐसे व्यक्तियोंद्वारा मर्मविज्ञानका उपयोग करनेके लिये ऋषियोंकी अनुमति थी। लेकिन ऐसे लोगोंको 'प्राणिक हीलिंग' अथवा 'यौगिक चिकित्सा'—जैसी उपचार-पद्धतियोंको छूनेतककी अनुमति नहीं थी। इसके भी कुछ शास्त्रीय कारण थे। इस पद्धतिमें चूँकि प्राणोंकी सहायतासे ही किसीका रोग ठीक किया जा सकता है, इसलिये स्वयं

उपचारकर्ताके प्राणोंका शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। जिन प्राणोंमें रोगबीज इकट्ठे होते हैं, उस रोगीके अशुद्ध प्राणोंको उपचारकर्ताके शुद्ध प्राणोंद्वारा ही शुद्ध किया जाता है, अन्यथा इन पद्धतियोंमें उपचारकर्ताके प्राण भी कुछ मात्रामें रोगीके दूषित प्राणोंकी अशुद्धि साथ लेकर ही वापस लौटते हैं। उस अशुद्धिको कैसे मिटाया जाय अथवा टाला जाय, इसका ज्ञान न होनेपर कालान्तरमें ऐसी चिकित्सा करनेवालेको ही रोगोद्भव होने लगता है।

दुर्भाग्यसे अपने ऐसे अशुद्ध हुए प्राणोंको पुनः कैसे शुद्ध किया जाय अथवा इस प्रकारके दोषोंको कैसे टाला जाय? इसका अचूक एवं शास्त्रीय ज्ञान आज अधिकांश उपचारकर्ताओं अथवा रेकीमास्टरोंमें नहीं दीखता; और न ही वह कहीं सिखाया जाता है। स्वसंरक्षणकी वह पद्धति आजकल लुप्त-सी हो गयी है। उपचारकर्ता अपने प्राणोंको शुद्ध कैसे करें? इसका ज्ञान प्राचीन सूर्यविज्ञानकी प्राणचिकित्साके जानकारोंके अतिरिक्त संसारमें किसीको नहीं है।

अथर्ववेदके ग्यारहवें काण्डका चौथा सूक्त 'प्राणसूक्त' के नामसे प्रसिद्ध है। प्राणोंमें जो रोग-निवारक औषधिशक्ति है, वह हमें दीर्घजीवनके लिये प्राप्त हो, ऐसा ऋषिने नौवें मन्त्रमें कहा है—

या ते प्राण प्रिया तनूयों ते प्राण प्रेयसी।

अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे॥

(अथर्व० ११।४।९)

मात्र प्राणोंकी यह 'औषधिशक्ति', 'आथर्वणी, अंगिरसी, दैवी और मानुषी'—इन चार प्रकारकी औषधि-चिकित्साओंद्वारा प्राप्त करके ही स्वस्थ हुआ जा सकता है। ईश्वरेच्छासे तथा प्राणोंकी प्रेरणासे ही ये सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ फल देती हैं।

आथर्वणीराङ्गिरसीदैवीमनुष्यजा उत।

ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥

(अथर्व० ११।४।१६)

ये चिकित्सा-पद्धतियाँ जब फल नहीं देतीं, तब उसे 'नियति' समझना चाहिये। किंतु ऐसा न करके,

जबरन प्राणायाम—जैसे श्रेष्ठ साधनोंका रोगनिवारणहेतु प्रयोग करनेपर वह ईश्वरीय योजनाके प्रतिकूल सिद्ध होता है, जो ईश्वरको पसन्द नहीं आता।

हठयोगद्वारा, विशेषतः हठयोगकी प्राणायाम-प्रक्रियाओंद्वारा रोगोंका निवारण करना शास्त्रपरम्परामें अप्रशस्त माना जाता है। शास्त्रोंमें ऐसे प्रकारोंकी निन्दा देखनेको मिलती है। इसका एक कारण यह है कि, जब इससे सुलभ, सुरक्षित और सस्ती रोग-निवारणकी पद्धतियाँ ईश्वरीय दयासे उपलब्ध हों; और उन पद्धतियोंका अवलम्ब करनेसे कोई हानि न होती हो, तो उन पद्धतियोंका उपयोग भला क्यों न किया जाय? करना ही चाहिये न! अब देखिये, कोई रोग जब औषधि दिखानेमात्रसे ठीक हो सकता हो, तो औषधि-प्राशन करने तथा उसपर व्यय करके कष्टमें पड़नेकी आवश्यकता ही क्या है? औषधि दिखाकर ही उस रोगको ठीक करना चाहिये।

मेरे परम पूज्य सद्गुरुदेव इस सम्बन्धमें एक सुन्दर किस्सा सुनाते थे। एक बार, उत्तर भारतमें रामपुरके नवाब बीमार हुए। उस बीमारीमें उनकी वाचा जाती रही। वे बोल नहीं सकते थे। उस जमानेमें भारतमें अंग्रेज डॉक्टर भी उपलब्ध हुआ करते थे। उन्होंने तथा हमारे नामचीन वैद्योंने नवाब साहबकी वाचा लौटा लाने हेतु नाना प्रकारके उपचार किये; लेकिन सब व्यर्थ। सभी डॉक्टर, हकीम-वैद्योंने उस अजब व्याधिके आगे घुटने टेक दिये।

रामपुरमें उन दिनों चंदौसी नामक एक गाँव हुआ करता था। वहाँ लीलाधर नामक एक प्रसिद्ध वैद्य रहा करते थे। आज भी उस प्रान्तमें उनका नाम बड़े आदरके साथ लिया जाता है। अन्तमें सबकी रायसे नवाब साहबके उपचारके लिये इन्ही लीलाधर वैद्यजीको बुलाना तय हुआ। ये लीलाधर वैद्यजी प्रायः कहीं किसीके पास जाते नहीं थे, किंतु नवाब साहब चूँकि एक अच्छे स्वभावके, परोपकारी व्यक्ति थे, इसलिये लीलाधरजी उनके यहाँ आ गये। उन्होंने उपस्थित सभी डॉक्टर, हकीम और वैद्योंको इकट्ठा किया और पूछा—'आप

सभीके सामने मैं इस रोगीकी जाँच करता हूँ और अपना मत बताता हूँ। कोई आपत्ति तो नहीं?' सबकी सम्मति मिलनेपर उन्होंने बड़े ध्यानसे नवाब साहबका परीक्षण किया और बोले—'यह रोगी निश्चय ही ठीक हो जायगा; किंतु आप मुझे यह बताइये कि मैं इन्हें औषधि देकर ठीक करूँ या औषधि दिखाकर ठीक करूँ?' यह सुनकर तो सब-के-सब असमंजसमें पड़ गये; क्योंकि उन्होंने तो अबतक औषधि देकर रोगीको ठीक करना सुना था, औषधि दिखाकर रोग ठीक करना तो वे जानते ही न थे। इसलिये उन सभीने मिलकर यह मनसूबा किया कि देखें तो सही, ये क्या करते हैं! सभीने कहा—'औषधि दिखाकर ही ठीक करें।'

रामपुरमें ही एक प्राथमिक विद्यालय था। वैद्य लीलाधरजीने उस विद्यालयके पचास बच्चोंको बुलाकर उन सभीके हाथमें एक-एक नीबू और एक-एक छुरी देकर कहा—'तुम्हें नवाब साहबके पास जाकर हाँसना है, नीबूको छुरीसे काटना है, जीभसे लगाना है और लौट आना है।' एकके बाद एक पचास बच्चोंने जब ऐसा किया तो देखते-देखते नवाब साहबके मुँहमें लार छूटने लगी और उनकी वाचा लौट आयी। वे बोलने लगे। सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। रोगी यदि केवल औषधिके दिखानेसे ठीक हो सकता है, तो औषधि-सेवनकी क्या आवश्यकता है?

रोगचिकित्साके लिये ईश्वरीय योजनानुसार अन्य अच्छे साधनोंके उपलब्ध होनेपर भी, रोगनिवारणहेतु 'प्राणचिकित्सा' के उपयोगको महात्माओंने तुच्छ माना है, गौण माना है। इसके भी कई महत्त्वपूर्ण कारण हैं। शारीरिक, मानसिक, स्वाभाविक और आगन्तुक—ये चारों प्रकारकी व्याधियाँ मुख्यतः हमारे पूर्वकर्मोंके अनुसार ही हमारे इस जन्ममें पैदा होती हैं। इसका अर्थ है कि पूर्वजन्ममें हमने जो पाप अर्जित किये होते हैं, उन पापोंके फलस्वरूप वह व्याधि उत्पन्न होती है। इस जन्ममें कोई रोग होना अथवा कष्ट होना, हमें दुःख हो—ऐसी घटना होना, यह उस पापकर्मका ही फल होता है। अच्छा! ऐसे पाप भी सब-के-सब एक साथ

फलित नहीं होते। किसी कर्मकी फलप्राप्तिके लिये बीचमें एक विशिष्ट काल बीतना आवश्यक होता है। उस कालका एक विशेष सूत्र होता है। वह काल अपने ढंगसे चलता रहता है। कालक्रमानुसार जब उस विशिष्ट कर्मको भोगनेका समय आता है, तभी उस योगसे विशिष्ट रोग प्रकट होता है और उसका भोग शरीरपर आता है। तब उस रोगको प्रत्यक्ष ही भोगना पड़ता है।

इसका अर्थ है, रोगके असली बीज कौनसे हैं? वे हमारे फलोन्मुख पापकर्म ही तो हैं। हमारे सभी पूर्वकर्मोंके संस्काररूप बीज हमारे प्राणोंमें होते हैं और यही कारण है कि हमारे प्राण सतत चंचल होते रहते हैं और उनकी असंख्य क्रिया-प्रक्रियाएँ भी चलती रहती हैं। प्राण चंचल, अशुद्ध होते हैं, इसीलिये शरीरमें नाना प्रकारकी गतिविधियाँ होती रहती हैं। यह चंचल, अशुद्ध प्राण रोगोंके अनेक बीज अपने पेटमें लिये बैठा रहता है। ईश्वरी संकल्पानुसार कालके प्रवाहमें वही इनमेंसे विशिष्ट बीजोंको खोलता रहता है। फिर प्राणोंसे वह रोग मन-दोष-धात्वादि क्रमसे हमारे शरीरमें आ जाता है और अन्तमें हमें उसे प्रत्यक्ष भोगना होता है। किसी रोगके शरीरपर प्रकट होनेकी यही रीति होती है।

तो फिर प्राणायाम मूलतः किसके लिये बताये गये हैं? इसको भी जान लेना चाहिये। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि—योगः चित्तवृत्तिनिरोधः (यो०सू० १। २) चित्तवृत्तियोंका निरोध हो, चित्तवृत्ति स्थिर हो—इसके लिये अष्टांगयोगके चतुर्थ अंगके रूपमें प्राणायाम आता है। इसलिये प्राणायामका मुख्य हेतु प्राणोंको स्थिर करना है। और उसके योगसे आत्मसाक्षात्कार करना ही है। उसका अन्य कोई प्रधान हेतु नहीं हो सकता। प्राणायाम करनेसे जब अशुद्ध प्राण स्थिर होते हैं, तब उन प्राणोंमें निहित रोगके बीज भी वक्ती तौरपर दबकर क्षीण हो जाते हैं; इसलिये अनायास ही कुछ समयके लिये स्वास्थ्यलाभ होता हुआ दिखायी देता है। जो नियमपूर्वक प्राणायाम करता है, उसे सहज ही दीर्घकालतक स्वास्थ्यलाभ होता है। परंतु जबतक प्राणायामका अभ्यास जारी रहता है, तबतक ही अशुद्ध प्राण स्थिर रहते हैं। प्राणायामके

अभ्यासको छोड़ते ही वे प्राण अपने मूल संस्कारोंके अनुसार पुनः चंचल होने लगते हैं। उनके चंचल होते ही रोगके दबे हुए क्षीण बीज पुनः पुष्ट होकर उभरने लगते हैं। अर्थात् प्राण जब अशुद्ध हों, तब प्राणायाम करना रोगनाशका स्थायी उपाय नहीं है। जबतक केवल कुम्भक साध्य नहीं होता, अन्तःकरण शुद्ध-सात्त्विक नहीं हो जाता, तबतक प्राणोंके रोग बीजोंका समूल नाश भी नहीं होता।

प्राण एवं चित्तकी अशुद्ध अवस्थामें किये जानेवाले प्राणायामसे केवल कुछ समयके लिये रोगबीज दब जाते हैं। वे सदाके लिये नष्ट नहीं होते। कालान्तरमें कर्मप्राबल्यसे वे पुनः उभर सकते हैं।

निसर्गतः वे रोगबीज केवल भोगनेसे ही समूल नष्ट होते हैं। इसका एक और रामबाण उपाय है, और वह है कि भगवती शक्ति स्वयं उन रोगबीजोंको नष्ट करे। उस शक्तिने ही प्राण निर्माण किये हैं, उसीके कारण कर्म भी निर्मित हुए हैं। इसलिये उसीको इन रोगबीजोंको नष्ट करना चाहिये। इस तरहसे वह शक्ति सभी रोगोंका समूल उच्चाटन कर सकती है। उस शक्तिद्वारा ऐसा करना ही सबसे आसान मार्ग सिद्ध होता है। इसमें शास्त्रोंकी ओरसे कोई आपत्ति अथवा अवरोध नहीं होता। किंतु यदि प्राणोंद्वारा ही रोगबीजोंको सदाके लिये नष्ट करना हो, तो उसके लिये प्राणोंका अत्यन्त विशुद्ध, प्रत्यक्ष शक्तिरूप होना अत्यावश्यक है।

सद्गुरुकृपा होनेके बाद उस कृपायोगसे शिष्यकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होती है। वह शक्ति-साधनामें शुद्धिकी नाना क्रियाओंद्वारा धीरे-धीरे साधकके प्राणोंको ही शुद्ध करती जाती है। इसीके साथ वह इन संस्काररूपी रोगबीजोंको भी क्रमशः भस्म करती जाती है। जिन-जिन रोगबीजोंको वह भस्म कर देती है, वे रोग अपने-आप नष्ट होते जाते हैं। रोगनिवारण की यही सबसे अच्छी, विश्वसनीय एवं टिकनेवाली पद्धति है।

किंतु इसके विपरीत यदि कोई प्राणोंके अशुद्ध होनेपर भी, केवल प्राणायामद्वारा रोगनिवारणका प्रयास करेगा, तो वे रोगबीज समूलरूपसे नष्ट नहीं होंगे।

प्राणोंके सूक्ष्म हो जानेके कारण वे रोगबीज तात्कालिक तौरपर दब जायेंगे और कालान्तरमें पुनः उभर आयेंगे। अच्छा! इसपर कोई कह सकता है कि 'यदि वे बीज पुनः उभरे, तो हम पुनः प्राणायाम कर लेंगे' तो ऐसे दूसरी बार किये गये प्राणायामका कोई उपयोग नहीं होगा। जो रोग एक बार अशुद्ध प्राणोंकी सहायतासे दब गया और यदि पुनः उभर आया, तो वह उन अशुद्ध प्राणोंकी सहायतासे दूसरी बार नहीं दबेगा, ऐसा शास्त्रोंका नियम है।

कुल मिलाकर प्रश्न यह उठता है, कि जब सच्चाई यह है, तो क्या रोगनिवारणके लिये प्राणायाम करना चाहिये? तो इसका सच्चा और शास्त्रोक्त उत्तर यही होगा कि 'केवल रोगनिवारणके लिये प्राणायामका उपयोग न किया जाय।'

इसका एक और भी शास्त्रीय कारण यह है कि प्राण जीवनशक्ति है। प्राणोंसे खेलना, महाविषधर सर्पसे खेलनेके समान है। वह कोई आसान काम नहीं है। प्राणोंसे खेलते समय, प्राणोंका नियमन करते समय, भूलसे यदि प्राण थोड़े भी विकृत हो जायँ, एक नाड़ीसे दूसरी नाड़ीमें चले जायँ अथवा बीचमें कहीं अटक जायँ, तो कुछ ऐसी आधि-व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं कि उनका किसी औषधि आदिसे ठीक होना तो दूर, किसी सामान्य योगीद्वारा भी वे ठीक नहीं हो सकतीं।

इसलिये प्राणायामको किसी जानकार एवं अधिकारी गुरुद्वारा शास्त्रशुद्ध रीतिसे समझ लेना और फिर उन्हींकी देख-रेखमें अत्यन्त सावधानीसे यम-नियमादिका पालन करते हुए करना अत्यन्त आवश्यक है। आजकल ऐसे गुरु-शिष्य दुर्लभ हो गये हैं, इसीके कारण ऐसे अनेक प्रसंग देखने-सुननेमें आते हैं कि अपने ही मनसे प्राणायाम करनेकी वजहसे उसमें चूक हो जाती है और फिर कोई अनिष्ट परिणाम सामने आता है।

एक साधारण-सी बात बताता हूँ। अपने सम्प्रदायकी साधनाप्रणालीमें भ्रामरीसे पहले कपालभाती अथवा भस्त्रिका क्रिया, विशिष्ट पद्धतिसे, बिलकुल थोड़े समयके लिये करनी होती है। उस प्रक्रियाको चूँकि

शक्ति ही सम्हाल रही होती है, इसलिये सुरक्षित होती है। लेकिन यदि कोई अपने ही मनसे, गलत तरीकेसे, अधिक देरतक भस्त्रिका करेगा तो कुछ ही दिनोंमें उसका ब्लडप्रेसर बढ़ा हुआ मिलेगा।

प्राणोंको सम्हालना आसान नहीं होता। यह काम अत्यन्त जोखिम भरा है। इसीलिये मनमाने ढंगसे प्राणोंके साथ न खेलें। अशुद्ध प्राण मूलतः चंचल होनेके कारण, जब हम उन्हें स्थित करनेका प्रयास करते हैं, तब वे और अधिक चंचल हो जाते हैं और प्राण जब सही तरीकेसे स्थिर नहीं होते तो वे विकृत हो जाते हैं; प्राणोंके विकृत हो जानेपर योगसाधकको कभी ठीक न होनेवाली आधि-व्याधियोंका सामना करना पड़ता है।

इस सम्बन्धमें कुछ वर्ष पहलेकी एक प्रत्यक्ष घटनाका उदाहरण देता हूँ। अमेरिकामें शक्तिपातकी दीक्षा-गुरु परमपूज्या सद्गुरु सौ० शकुंतला जयंत आगटे ताईजीके एक साधक हैं। वे जब पहली बार उनके पास आये थे, तब उनकी अवस्था बड़ी विचित्र हो चुकी थी। वे बिल्कुल मरणासन्न-अवस्थामें थे। उन्होंने किसीको सुनकर, देखकर जो प्राणायामके प्रयोग किये थे, उनको करते समय उनसे चूक हो गयी थी, जिससे कुछ दिनोंके बाद उनके प्राण विकृत होने लगे और अल्पावधिमें ही यह नौबत आ गयी कि उनके कान, नाक और मुँहसे रक्त बहने लगा। उनकी जाँच करनेवाले डॉक्टरोंने स्पष्ट कह दिया कि इसका अब कोई उपाय नहीं है। मरीज बस कुछ दिनोंका ही साथी है, इन्हें आप घर ले जायँ।

संयोगसे उसी समय ताईजी एक कार्यक्रमके निमित्त अमेरिकाके उसी शहरमें थीं। कोई उस भले आदमीको उनके पास ले आया। उसे देखकर ताईजीने तत्क्षण कहा कि 'यह तो प्राणोंकी विकृति है; और वह अब इस स्थितिमें पहुँच गयी है, कि इसे कोई ठीक नहीं कर सकता।' यह सुनते ही उनके साथ आये स्नेहीजन हताशामें डूब गये। उन सभीको बहुत दुःख हो रहा था।

उन सभीका वह दुःख देखकर ताईजीसे रहा नहीं गया, इसलिये अंततः उन्होंने राजाधिराज श्रीस्वामी समर्थ महाराजजी (महाराष्ट्रके शहर सोलापूरसे ३५

कि०मी० दूर अक्कलकोटमें प्रकट उन्नीसवीं सदीके यतिअवतार) -से प्रार्थना की। सद्गुरु करुणाघन श्रीस्वामी समर्थ महाराजजीको उस व्यक्तिपर दया आ गयी, वे ताईजीसे बोले—'क्यों री बच्ची, इसने हमसे पूछकर प्राणायाम किया था क्या?' इसपर ताईजी बोलीं—'ऐसा तो नहीं किया; परंतु अब जब ये इस अवस्थामें सामने आये हैं, तो अब क्या किया जाय?' यह सुनकर श्रीस्वामी समर्थ महाराज बोले—'इसे सीधा करके बैठाओ। हम इसकी पीठमें एक लात मारते हैं।' ताईजीने यह बात उस व्यक्तिके साथ आये लोगोंको न बताकर उनसे सिर्फ इतना ही कहा—'आप लोग किसी तरहसे इन्हें पकड़कर बैठाओ।'।

तब तीन-चार लोग उन्हें थामकर बैठनेकी स्थिति लाये ही थे कि, वे सज्जन कुछ ऐसे धड़ामसे आगेकी ओर ठेल दिये गये, जैसे किसीने उनकी पीठमें लात मार दी हो। किंतु उसी क्षणसे उनकी ब्लीडिंग थम गयी और धीरे-धीरे वे पूरी तरहसे स्वस्थ हो गये।

सच तो यह है, कि ऐसी अंतिम चरणमें पहुँच चुकी प्राणविकृति, साक्षात् परब्रह्म श्रीस्वामी समर्थ महाराजजीकी कृपा हो जानेकी वजहसे ही दुरुस्त हो पायी, वरना वे सज्जन तो अबतक सिधार चुके होते।

यही कारण है, कि हमारे शास्त्रोंने यह निष्कर्ष निकाला है कि योगका उपयोग, प्राणायामका उपयोग केवल आत्मसाक्षात्कारके लिये ही किया जाय, रोगनिवारणके लिये नहीं। अगर बहुत ही जरूरी हुआ, तो योगासनोंका प्रयोग करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

ऋषियोंने अनेक प्रकारके योगासनोंमेंसे कुछ सुरक्षित तथा अच्छे स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त उपयुक्त आसन चुनकर उनका एक समूह बनाया है। आसनोंके उस विशिष्ट समूहको 'सूर्यनमस्कार' कहते हैं। सूर्यनमस्कारोंके कारण, विशेषतः साधकोंके लिये जितना शारीरिक व्यायाम आवश्यक होता है, उतना व्यायाम योग्य एवं अचूक ढंगसे होता है। इसलिये 'सूर्यनमस्कार' साधकोंके लिये एक अत्युत्कृष्ट व्यायाम है।

[प्रेषक—श्रीकपूरचन्द रघुवरदयालजी अग्रवाल]

भगवन्नाम-जपका विज्ञान

[गताङ्क ४ पृष्ठ २८ से आगे]

(श्रद्धेय स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी महाराज)

अनेक बार नामजपकी आवश्यकता

शंका—भगवान्‌के एक नाममें ही यह सामर्थ्य है कि उसका एक बार भी उच्चारण करनेसे मनुष्य तरणतारण हो जाता है। 'बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥' (रा०च०मा० २।२१७।४) जिसने एक बार भी 'हरिः' इन दोनों अक्षरोंका उच्चारण किया, उसने मोक्षप्राप्तिके लिये कमर कस ली—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

अतः अनेक बार नामजपकी क्या आवश्यकता?

समाधान—पहले कहा जा चुका है कि जिन्होंने एक बार नहीं हजार-हजार बार लगातार वर्षों श्रद्धापूर्वक नामका उच्चारण किया है, वे भी अपने अनुभवसे यही कहते हैं कि दूसरोंको तारनेकी बात ही क्या, स्वयं हम ही तर नहीं पाये; अतः अनुभवविरुद्ध होनेसे उक्त अर्धाली और लोकमें कथित 'एक बार' का अर्थ मरणकालमें उच्चारण किया गया एक बार समझना चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि एक बार नामके उच्चारणसे ही सम्पूर्ण पापोंका संहार और जीवका संसारसागरसे उद्धार हो जाता, तो अल्प तथा महान् पापोंसे उत्पन्न रोगोंका नाश करनेके लिये पापकी अल्पता-महत्ताके अनुसार मृत्युञ्जय-जपकी न्यूनाधिक संख्याका विधान न किया जाता। गायत्रीके २४ लाख मन्त्रका एक पुरश्चरण होता है, 'हरे राम' मन्त्रोंके ३ करोड़ जपसे ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है, ऐसा जो कलिसन्तरण उपनिषद्में कहा है, वह सब व्यर्थ हो जायगा।

कर्मोंसे नामजपकी विशेषता

शंका—पापोंकी मात्राके अनुसार नाम-जपकी संख्याका विधान माननेपर तो नाम-जप भी अन्य पुण्य कर्मोंके अनुष्ठानके समान ही वाणीसे किया जानेवाला पुण्यकर्मानुष्ठान ही सिद्ध होगा, ऐसी दशामें नाममें

पुण्यकर्मसे क्या विशेषता रह जायगी?

समाधान—शास्त्रीय पुण्यकर्मानुष्ठानमें जाति, देश, काल आदिके नियमोंका पालन करना अत्यावश्यक है। इन नियमोंका पालन किये बिना पुण्यकर्मानुष्ठान पापनाशक न होकर पापके उत्पादक भी हो सकते हैं। किंतु भगवन्नाम-जपमें जाति आदिके नियम-पालनकी आवश्यकता नहीं, शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज जातिके भी लोग जहाँ-तहाँ भगवन्नाम-संकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। नाम-जपमें देश, काल, शौचाचार आदिका नियम नहीं। यज्ञ, दान, पुण्यस्नानमें और (विधिपूर्वक अनुष्ठान) सत्-जपके लिये शुद्ध कालादिकी आवश्यकता है, भगवन्नाम-जपमें नहीं। चलते, फिरते, खड़े रहते, ऊँघते, खाते, पीते 'कृष्ण-कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पापरूपी केंचुलसे छूट जाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सभी अवस्थाओंमें कमलनयन भगवान्‌का स्मरण जो करता है, वह बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।

यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्॥

सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्।

न देशकालनियमः शौचाचारविनिर्णयः॥

कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।

विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते॥

गच्छन्तिष्ठन् स्वपन्वापि पिबन् भुञ्जन्स्वपन्तथा।

कृष्ण कृष्णोति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

शंका—सत्-जपमें कालका नियम है—'कालोऽस्ति सज्जपे' ऐसा जब स्पष्ट कहा है, तब नामजपमें कालादिका नियम नहीं, ऐसा कहना परस्पर-विरुद्ध है।

समाधान—सज्जपे यहाँ जपमें 'सद्' शब्द लगाकर यह बताया है कि साधारण रीतिसे नामजपमें नहीं, किंतु विधिपूर्वक अनुष्ठानरूपमें किये जानेवाले सत्-जपमें ही कालादि नियमकी अपेक्षा है। इसी अभिप्रायसे तुलसीदासजीने कराल-कलिकालमें जपको भी साधन नहीं माना—

एहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥

(रा०च०मा० ७।१३०।५)

कुछ विद्वानोंका कहना है कि गुरुद्वारा दिये गये मन्त्रविशेषका स्नान आदिसे पवित्र होकर पवित्र देश-कालमें जप करनेका विधान है, उसीको यहाँ 'सज्जप' शब्दसे कहा है, सर्वसाधारण भगवन्नामको नहीं। यही कारण है कि इस रहस्यको जाननेवाले गुरुजन अपने शिष्यको गुरुमन्त्रके अतिरिक्त सर्व-अवस्थामें जप करने-योग्य छोटा-सा भगवन्नाम अलगसे बताते हैं।

नाम-जप और उससे फलमें भेद

विधिपूर्वक किये गये यज्ञसे नाम-संकीर्तनरूप यज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है और उपांशु जप सौ गुना तथा मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

(मनुस्मृति २।८५)

इस श्लोकमें मनु महाराजने नाम-जपके वाचिक, उपांशु और मानसिक—ये तीन भेद बताये हैं। जो जप वाणीसे इतनी जोरसे बोलकर किया जाता है कि उसे दूसरे लोग भी सुन सकते हैं, उस जपको वाचिक जप कहते हैं। जो जप ओठ हिलाते हुए इतने मन्द स्वरमें किया जाता है कि दूसरे लोग सुन नहीं सकते, जप करनेवाला ही सुन पाता है, उसे उपांशु जप कहते हैं। जो जप केवल मनसे ही किया जाता है, उसे मानसिक जप कहते हैं। वाचिकसे उपांशु और उपांशुसे मानसिक जपका दस गुना अधिक फल बतानेका कारण यह है कि इनमें उत्तरोत्तर मनका सम्बन्ध भगवन्नामसे अधिक रहता है और संसारसे सम्बन्ध अधिक कटता है।

देखिये, बातचीत करते हुए संसारी मनुष्य संसारके कार्य और संसारके पदार्थोंका चिन्तन जैसे करते रहते हैं,

वैसे ही अभ्यासशील साधक वाणीसे नाम-संकीर्तन करते हुए संसारके कार्य तथा संसारके पदार्थोंका चिन्तन कर सकता है, किंतु पूर्णतया संसारके कार्यमें संलग्न हो जानेपर उपांशु जप बन्द हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उपांशु जप तभी हो सकता है, जब वाचिक जपकी अपेक्षा संसारका कार्य कम किया जाय और भगवन्नाममें मन अधिक लगाया जाय। इस विवेचनसे यह भी शिक्षा मिलती है कि संसारका अधिक कार्य करते हुए वाचिक जप ही करना चाहिये। इस धोखेमें नहीं रहना चाहिये कि उस समय भी मेरा उपांशु या मानसिक जप चलता रहता है। संसारका कार्य करते रहनेकी बात तो दूर रही, संसारके पदार्थका मनसे चिन्तन होते रहनेपर भी मानसिक जप वैसे ही नहीं हो सकता, जैसे वाणीसे अन्य सांसारिक बातें करते समय वाचिक नाम-जप नहीं किया जा सकता। मनसे मानसिक जप तो तभी होगा, जब मनमें भगवन्नामको छोड़कर अन्य किसीका चिन्तन न हो। ऐसी दशामें यह सिद्ध हो जाता है कि उपांशु जपकी अपेक्षा भी मानसिक जपमें संसारके सम्बन्धका अधिक त्याग और भगवन्नामसे अधिक सम्बन्ध होता है। कारण उपांशु जपमें भी संसारका कुछ कार्य तथा सांसारिक पदार्थका चिन्तन हो सकता है, मानसिक जपमें नहीं, अतः इसका हजार गुना फल बताना ठीक ही है।

भ्रमनिवारण

'मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ है' इसे पढ़-सुनकर अधिक फलके लोभसे मानसिक जपके अनधिकारी साधक भी 'मानसिक जप ही हम करेंगे' ऐसा निश्चय करके उपांशु और वाचिक जपका परित्याग कर देते हैं, उनसे जब हम यह पूछते हैं कि जब आप मानसिक जप करने बैठते हैं, तब आपका मन भगवन्नामको छोड़कर अन्यका चिन्तन तो नहीं करता? तो वे कहते हैं कि शायद घण्टेभरमें सब मिलाकर २-४ मिनट भगवन्नामका चिन्तन होता हो, बाकी समय तो अन्यका ही चिन्तन चलता रहता है। यह उत्तर सुनकर हम उनसे पुनः प्रश्न करते हैं कि एक व्यक्तिको आपने मन्दिरमें ४ से ५ बजेतक बैठनेको कहा, उसी समय वह बाजारमें भ्रमण करता हुआ आपको

मिला। ऐसी दशामें उस व्यक्तिद्वारा हजार बार शपथ करके कहनेपर भी जब आप यह नहीं मानते कि वह व्यक्ति ४ से ५ बजेतक मन्दिरमें बैठा रहा, तब ५६-५८ मिनट अन्यका चिन्तन मन करता रहा, ऐसा स्वयं अनुभव करके भी यह कैसे मानते हैं कि मन एक घण्टे मानसिक जप करता रहा? अधिक लाभके लोभसे तो आप वाचिक, उपांशु जपके लाभसे भी वंचित रह गये। इसके विपरीत एक साधक झाँझ-करताल बजाकर वाणीद्वारा उच्च स्वरसे नाम-संकीर्तनमें इतना तन्मय हो जाता है कि बाजे-गाजेके साथ कोलाहल करती हुई पाससे निकलकर जाती हुई बारातका भी पता उसे नहीं लगता। अल्प फलप्रदायक कहे जानेवाले ऐसे वाचिक जपका मानसिक जपसे कम फल नहीं होता। इसका एकमात्र कारण यही है कि जिस जप या साधनाद्वारा साधकके मनका भगवान्से अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो और संसारसे सम्बन्ध कटता हो, वही जप या साधना श्रेष्ठ मानी जाती है। साधनाओंमें स्वरूपतः श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता नहीं होती।

नाम-जपमें रस न आनेका कारण

शंका—हमें श्रद्धापूर्वक निष्काम भावसे नाम-जप करते हुए २० वर्ष हो गये, तो भी अभीतक नाम-जपमें रस नहीं आता, भगवान्में तथा उनके नाममें प्रीति नहीं हुई तथा संसारकी आसक्ति ज्यों-की-त्यों बनी हुई है, इसका क्या कारण है?

समाधान—आप अपनी वस्तुस्थितिको ठीक-ठीक नहीं समझते, इसलिये ऐसी शंका करते हैं। अनेक सच्चे साधक इसी प्रकारकी शंका करते हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि प्रारम्भमें जब आपने नामजप करना शुरू किया था, तब जैसे थोड़ी देरमें ही मन उकता जाता था, क्या वैसे ही अब भी उकता जाता है? क्या प्रथमकी तरह भगवान् और उनका नाम-स्मरण तथा उच्चारण किये बिना दो-चार दिन भी आप रह सकते हैं? संसारके कार्य तथा पदार्थका परित्याग करके १-२ दिनके लिये भी आप सत्संग-संकीर्तन आदिमें नहीं जाते थे, क्या आज भी वैसी ही स्थिति बनी हुई है? मेरे इन सभी प्रश्नोंका उत्तर 'नहीं' के रूपमें जब वे देते हैं, तब हम कहते हैं—इससे यह सिद्ध हो गया कि

आपको ऐसी शंका अपनी वस्तुस्थितिको न समझनेके कारण ही होती है। कारण ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि कोई सच्चा साधक २० वर्षोंतक श्रद्धापूर्वक निष्काम भावसे नाम-जप या अन्य कोई साधना करे और कुछ भी लाभ न हो।

प्रश्न—आपका कथन ठीक है, तो भी विशेष उल्लेखनीय लाभ नहीं हुआ, इसका कारण क्या है?

उत्तर—पापकर्मके दो परिणाम होते हैं, एक तो पापकर्मोंसे अशुभ अदृष्टरूप पाप उत्पन्न होता है, जिससे कालान्तर या जन्मान्तरमें दुःखरूप फल भोगना पड़ता है। दूसरा, बार-बार पापकर्मोंको करनेसे उनके संस्कार दृढ़ होकर पाप-वासना हृदयमें जम जाती है। नामजपके भी दो परिणाम होते हैं। एक तो नामजपसे पापका नाश होता है। दूसरा बार-बार नामजप करनेसे नामजपके संस्कार दृढ़ होकर नामवासना हृदयमें जम जाती है। जब नाम-वासना हृदयमें जम जाती है, तभी पाप-वासनाका विनाश होता है। इसके बाद भी श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक नामजप करते रहनेपर नामजपमें रस आने लगता है और भगवान्में भक्ति तथा भगवान्के नाममें विशेष प्रीति होने लगती है, जिससे संसारकी आसक्ति मिटने लगती है, ऐसा क्रम है। अतः जिन लोगोंके पापकर्म जितने अधिक होते हैं या पाप-वासना जितनी अधिक सुदृढ़ होती है, उसके अनुरूप नाम-जप तथा नाम-वासना सुदृढ़ होनेपर ही उनका विनाश होता है, इसीलिये किसीको अल्पकालमें एवं किसीको दीर्घकालमें लाभ प्रतीत होता है।

भगवन्नामरूप अलौकिक शब्दमें तथा भगवान्के अलौकिक दिव्य रूपादिमें ही नहीं, किंतु लौकिक शब्द-रूपादि विषयोंमें भी तभी रस (आनन्द) आता है, जब मन-इन्द्रियाँ उनमें तन्मय हो जाती हैं। तन्मयताकी योग्यता जन्मान्तरमें या इस जन्ममें सम्पादित अभ्यास तथा सात्त्विक गुणकी तारतम्यताके कारण प्रत्येक व्यक्तिमें न्यूनाधिक होती है। यही कारण है कि लौकिक अतिप्रिय शब्द-रूपादि विषयोंमें भी मनुष्यको एक साथ दीर्घकालतक आनन्द नहीं आता, अतः भगवान्के नाम-रूपादिमें दीर्घकालतक रसास्वादनके लिये धैर्यपूर्वक क्रमशः तन्मयताकी योग्यता बढ़ानेका प्रयास करना चाहिये।

नाम-जपमें मन स्थिर क्यों नहीं होता ?

प्रायः नाम-जप करनेवाले यह प्रश्न किया करते हैं कि श्रद्धापूर्वक भी नाम-जप करते समय मन स्थिर क्यों नहीं होता ? इस प्रश्नका उत्तर प्रायः सन्त यही देते हैं कि नामी या नाममें प्रीति न होनेके कारण मन स्थिर नहीं होता। अपने उत्तरकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये वे कहते हैं कि देखो, तुम्हारी प्रीति पुत्र, पैसा और प्रतिष्ठामें है, इनमें तुम्हारा मन लग जाता है ? या नहीं ? अनुभूतिमूलक युक्तियुक्त उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ताको तत्काल तो बहुत सन्तोष हो जाता है, परंतु स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है; क्योंकि १०-२० वर्ष बीत जाते हैं, फिर-फिर वही प्रश्नका सत्य उत्तर पानेके लिये यह हो जाता है ? इसका उत्तर युक्ति आदिसे देनेकी आवश्यकता नहीं, जिसकी पुत्र आदि जिस पदार्थमें अतिप्रीति हो, उस पदार्थको नेत्रोंके सम्मुख रखकर उसीमें मन स्थिर करके देखे। तब वह यही उत्तर देगा कि घण्टे-दो घण्टेकी तो बात ही क्या, ५-१० मिनट भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि उस प्रीतिके आस्पद पदार्थमें ही मन स्थिर रहा हो, बीचमें किसी अन्य पदार्थपर न गया हो। इस प्रयोगसे यह सिद्ध हो जाता है कि जिस पदार्थमें प्रीति ही नहीं, किंतु अतिप्रीति है, उसमें भी मन स्थिर नहीं होता। अतः मनकी स्थिरताके लिये प्रीतिका होनामात्र पर्याप्त नहीं, इसके लिये तो जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे उसे खींचकर प्रेमास्पदमें लगानेका अभ्यास भी अपेक्षित है। यही कारण है कि गीता तथा योगसूत्रमें मनका निग्रह करनेके लिये निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यास करना आवश्यक बताया है।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(गीता ६। ३५, २६)

अभ्यासवैराग्याभ्यां

तन्निरोधः।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।

(योगसूत्र १। १२, १४)

ऐसा होनेपर भी इतना अवश्य मानना होगा कि

जिस पदार्थमें प्रीति होती है, उसमें अभ्यासद्वारा मन स्थिर करनेमें वह प्रीति सहायक होती है। इसलिये मन स्थिर करनेके लिये आलम्बनका विधान करते समय अपनेको जो अभिमत हो अर्थात् जिसमें प्रीति हो, जो रुचिकर हो, ऐसा आलम्बन लेनेका विधान योगसूत्रकारने किया है—‘यथाभिमतध्यानाद्वा।’ (योगसूत्र १। ३९)

इसी दृष्टिसे सन्तजन प्रीतिको मनकी स्थिरतामें हेतु कह देते हैं, परंतु पूर्ण सत्य उत्तर यह है कि प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यासके बिना मन स्थिर नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि नाम-जपजन्य सुख सात्त्विक सुख है। सात्त्विक सुख प्रारम्भमें तो विषतुल्य अरुचिकर ही होता है और परिणाममें ही हितकर होता है, इसमें अभ्यासद्वारा ही रमण अर्थात् रसास्वादन होता है, ऐसा गीतामें कहा है—

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।

(गीता १८। ३६-३७)

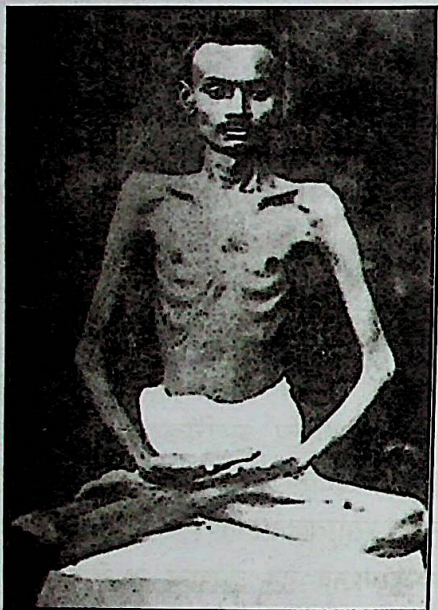
सारांश

इस कराल-कलिकालमें विविध विधानोंसे युक्त अनुष्ठान करना सम्भव न होनेके कारण देश, काल, जाति आदि विधान-निरपेक्ष नाम-जप ही कल्याणका मुख्य साधन है। नाम-जपमें श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताकी परम आवश्यकता है, अन्यथा इनका विधान करनेवाले शास्त्रवचनोंसे विरोध होता है। नामापराधप्रतिपादक शास्त्रवचनोंकी पर्यालोचना करनेपर श्रद्धाकी ही नहीं किंतु अन्य शास्त्रीय विधि-निषेध पालनकी आवश्यकता भी सिद्ध होती है। पूर्वके पाप और पाप-वासनाके तारतम्यके अनुसार नाम-जप और नाम-वासनाकी सुदृढ़ता होनेपर ही उनका सम्यक् विनाश होता है और इसके बाद ही भगवान्में विशुद्ध भक्ति होती है। वाचिक, उपांशु, मानसिक जपोंमेंसे जिस प्रकारके जपसे संसारका सम्बन्ध अधिक कटता हो और भगवान्में अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो, वही जप श्रेष्ठ है। नाम-जपमें मनको स्थिर करनेके लिये श्रद्धा और प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकाल-पर्यन्त अभ्यासकी भी आवश्यकता होती है। [समाप्त]

संत-चरित—

महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र

(श्रीहजारीमलजी बाँठिया)



भारत-भूमि सदासे संतोंकी उर्वरा भूमि रहती आयी है। यहाँ अनेक महापुरुष अवतीर्ण हुए हैं, जिनका स्थान विश्वके इतिहासमें बेजोड़ है। इसी श्रृंखलासे बीसवीं शताब्दीमें भी एक ऐसे ही अलौकिक आध्यात्मिक महापुरुष श्रीमद् राजचन्द्रका आविर्भाव हुआ है, जिनकी जीवनचर्याकी अमिट छाप विश्ववन्द्य महात्मा गांधीजी-जैसे महापुरुषपर पड़ी। गांधीजीने अहमदाबादमें आयोजित 'श्रीमद् राजचन्द्र-जयन्ती' पर सभापति-पदसे कहा था—

‘मेरे जीवनपर श्रीमद् राजचन्द्र भाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पड़ा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनके विषयमें मेरे अपने विचार हैं। मैं कितने ही वर्षोंसे भारतमें धार्मिक पुरुषकी शोधमें हूँ; परंतु मैंने ऐसा धार्मिक पुरुष भारतमें अबतक नहीं देखा, जो श्रीमद् राजचन्द्र भाईके साथ प्रतिस्पर्धामें खड़ा हो सके। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी। ढोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे। उनमें एक ऐसी महती शक्ति थी, जिसके द्वारा वे प्राप्त हुए प्रसंगका पूर्ण लाभ उठा सकते थे। उनके लेख अंग्रेज तत्त्वज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण भावनामय और आत्मदर्शी हैं। यूरोपके

तत्त्वज्ञानियोंमें मैं टालस्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान् समझता हूँ, परंतु श्रीमद् राजचन्द्र भाईका अनुभव इन दोनोंसे भी चढ़ा-बढ़ा था।’

महात्मा गांधी जब डरबन (दक्षिण अफ्रीका)-में थे, तब उनके मनमें हिंदू-धर्मके प्रति शंका हो गयी और उनका झुकाव ईसाई पादरियोंके उपदेशसे ईसाई-धर्मकी ओर हो गया था। उस समय उन्होंने २७ प्रश्नोंके उत्तर श्रीमद्से माँगे थे, जिनका उत्तर श्रीमद्ने मिति आसोज वदी ६ शनिवार, विक्रम संवत् १९५०को दिया। इससे गांधीजीकी सब शंकाओंका समाधान हो गया और उनकी हिंदू-धर्ममें पूर्ण आस्था हो गयी। सत्य, अहिंसा और दया-धर्मका मन्त्र गांधीजीको श्रीमद् राजचन्द्रसे ही मिला था, जिसके बलपर उन्होंने हमारे देशको आजाद कराया। श्रीमद् राजचन्द्रसे गांधीजीकी प्रथम भेंट जुलाई सन् १८९१में जब वे विलायतसे बंबई आये थे, हुई थी; उसके बाद तो निरन्तर सम्पर्क बढ़ता ही गया। श्रीमद् राजचन्द्रका संक्षिप्त जीवन-परिचय इस प्रकार है—

जन्म

श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म विक्रम संवत् १९२४ (सन् १८६७), मिति कार्तिक सुदी पूर्णिमा रविवारके दिन काठियावाड़—मोरवी राज्यके अन्तर्गत बवाणिया गाँवमें दशाश्रीमाली वैश्यजातिमें हुआ था। इनके पिताका नाम रवजीभाई पंचाण और माताका नाम देवबाई था। श्रीमद्के एक भाई, चार बहिनें, दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं।

बाल्यावस्था

बालक राजचन्द्रकी सात वर्षकी बाल्यावस्था नितान्त खेलकूदमें बीती थी। इस दशाका उन्होंने अपनी आत्मचर्यामें लिखा है—‘सात वर्षतक एकान्त बालसुलभ खेल-कूदोंका सेवन किया। इतना मुझे उस वक्तके सम्बन्धमें याद है कि उस समय मेरी आत्मामें विचित्र कल्पनाएँ

हुआ करती थीं। खेल-कूदतकमें विजय प्राप्त करने और राजराजेश्वर-जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी परम जिज्ञासा होती। वस्त्र पहनने, साफ रखने, खाने-पीने और सोने-बैठनेके सम्बन्धमें विदेही दशा थी। फिर भी मेरा हृदय कोमल था। वह दशा अब भी याद आती है। अबका विवेकी ज्ञान उस समयमें होता तो मुझे मोक्षके लिये इतनी अधिक जिज्ञासा नहीं रहती। उस समयकी ऐसी निर्दोष दशा होनेसे वह पुनः-पुनः स्मरण हो उठती है।'

उनकी सात वर्षसे तेरह वर्षतककी आयु शिक्षा-अभ्यासमें बीती। वे बचपनसे ही मेधावी छात्र थे। उनकी स्मृति बड़ी तीव्र थी। जो पाठ शिक्षक पढ़ाते, उसका भावार्थ तत्क्षण ही वे समझ लेते और वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता।

श्रीमद् राजचन्द्रको सात वर्षकी अल्पायुमें ही जातिस्मरणरूप ज्ञान हो गया था। उन्हें अपने पूर्व-जन्मके भावोंका आभास हो गया था।

बालक राजचन्द्रपर ईश्वर-भक्तिकी छाप उनके पितामहद्वारा पड़ी। वे श्रीकृष्णके उपासक एवं भक्त थे। बालक राजचन्द्र उनके साथ श्रीकृष्ण-कीर्तन करता। अवतारोंके चमत्कारिक जीवनसे बालक राजचन्द्र बहुत प्रभावित हुआ। कहते हैं कि श्रीमद् राजचन्द्रने सवा वर्षके भीतर ही सब आगमोंको हृदयंगम कर लिया था। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि जो पाठ पढ़ लेते, उसे कभी भी भूलते नहीं थे। आपकी अद्भुत पठन-पाठन एवं लेखन-शक्तिसे प्रभावित होकर कुछ श्रीमन्त आपको विद्याभ्यासके लिये काशी भेजना चाहते थे, किंतु श्रीमद्ने दूसरोंसे आर्थिक सहायता लेकर जाना स्वीकार नहीं किया।

गृहस्थाश्रममें प्रवेश

श्रीमद् ज्यों-ज्यों वयस्क होते जा रहे थे, त्यों-त्यों उनका अध्ययन, मनन एवं चिन्तन परिपक्व होता जा रहा था। आपका विवाह विक्रम-संवत् १९४४, माघ सुदी १२को १९ वर्षकी अवस्थामें गांधीजीके परम मित्र डॉ० प्राणजीवन मेहताके बड़े भाई पोपटलालकी पुत्री झबकबाईके साथ हुआ था। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके

बाद भी स्त्री एवं संसारके अन्य सुख उनको किंचिन्मात्र भी आकर्षित न कर सके। उनकी उस समय भी यही धारणा रही कि 'कुटुम्बरूपी काजलकी कोठरीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो, तो भी एकान्तवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है, उसका सौवा भाग भी उस काजलके घरमें रहनेसे नहीं हो सकता; क्योंकि वह कषायका निमित्त है और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।'

कुशल व्यापारी

श्रीमद् राजचन्द्र परम तत्त्वज्ञानी होनेके साथ-साथ एक परम कुशल व्यापारी भी थे। उन्होंने २२ वर्षकी आयुमें विक्रम संवत् १९४६में श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवनके साझेमें बंबईमें जवाहरात, कपड़े तथा किरानेके आयात-निर्यातका काम शुरू किया। जवाहरातके धन्धेमें बहुत कुशाग्र बुद्धिकी जरूरत होती है। वे इस धन्धेमें पूरे पारखी एवं निपुण थे। दूसरेकी चालाकी वे तुरन्त ताड़ जाते थे, वह उन्हें असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भ्रुकुटि भी चढ़ जाती और आँखोंमें लाली आ जाती।

धर्मकुशल लोग व्यवहार-कुशल नहीं होते, इस वहमको राजचन्द्र भाईने मिथ्या सिद्ध करके बताया था; अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी और होशियारी बरतते थे। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकांश सच्चे ही निकलते थे।

रहन-सहन

श्रीमद् राजचन्द्रका रहन-सहन अत्यन्त सादा एवं संयमित था। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के वे ज्वलंत प्रतीक थे। उनका पहनावा अँगरखा, खेश, गर्म सूतका पेंट और धोती होते। भोजनके लिये जो मिलता, उसमें संतुष्ट रहते। उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला समझ सकता कि वे चलते-चलते भी अपने विचारोंमें मग्न हैं। उनके कण्ठमें ऐसा माधुर्य था कि जिसको सुनते-सुनते मनुष्य थकते नहीं; चेहरा हँसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अन्तरानन्दकी छाप थी।'

महिला-उद्धारक

श्रीमद् राजचन्द्रके हृदयमें स्त्री-जातिके प्रति बड़ा सम्मान था। वे एक पत्रमें लिखते हैं—'स्त्रीमें कोई दोष

नहीं, परंतु दोष तो अपनी आत्मामें है। स्त्रीको सदाचारी ज्ञान देना चाहिये और उसे एक सत्संगी समझना चाहिये। उसके साथ धर्म-बहिनका सम्बन्ध रखना चाहिये।'

स्त्री-समाजको बोध देनेके लिये आपने १६ वर्षकी आयुमें 'स्त्री-नीतिबोध' नामक एक पद्यग्रन्थ भी बनाया था। इस ग्रन्थमें स्त्रियोंको सुधर बननेके लिये हर प्रकारका उपदेश दिया है। अनमेल एवं बाल-विवाहके आप विरोधी थे।

कवि-लेखक और साहित्यकार

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मजात कवि एवं सिद्धहस्त लेखक थे। वे संस्कारी, ज्ञानी तथा साहित्यकार थे। उनकी काव्य-प्रतिभा अनूठी थी; उनकी कविता जितनी सरल है, उतनी ही मौलिक एवं सरस है। प्रत्येक कवितामें शब्द-योजना और भाव अनूठे हैं। श्रीमद्को कविताके लिये श्रम नहीं करना पड़ता था। उपराम, भक्ति, चरित्र, तत्त्वज्ञान आदि सभी विषयोंपर श्रीमद्ने गद्य एवं पद्यमें लिखा है। गांधीजीके शब्दोंमें 'उन (श्रीमद्) के लेखोंकी एक असाधारणता यह है कि उन्होंने स्वयं जो अनुभव किया, वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं, दूसरेके ऊपर छाप डालनेके लिये उन्होंने एक लाइन भी लिखी हो, यह मैंने नहीं देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पड़ी ही रहती है। इस कापीमें वे अपने मनमें जो विचार आते, वे लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होते थे।'

श्रीमद्ने ८ वर्षकी उम्रसे कविता करना शुरू कर दिया था। ९ वें वर्षमें रामायण और महाभारतको संक्षिप्तरूपमें पद्योंमें लिख दिया था। १० वर्षकी उम्रमें आपके विचार काफी परिपक्व हो गये थे। ११ वर्षकी उम्रमें आपने कई निबन्ध लिखे, जिनपर उन्हें पारितोषिक मिला। १२ वर्षकी उम्रमें 'घड़ियाल' पर तीन सौ पंक्तियोंकी एक कविता लिखी। 'स्त्री-नीतिबोध', 'काव्यमाला', 'वचन-सप्तसती' और चौथी

रचना 'पुष्पमाला'—ये सब श्रीमद्की १६ वर्षके पूर्वकी रचनाएँ हैं। जिस तरह जपमालाके १०८ दाने होते हैं, उसी तरह श्रीमद् राजचन्द्रने सुबह-शाम, निवृत्तिके समय पाठ करनेके लिये राजा, वकील, श्रीमंत, बालक, युवा, वृद्ध, धर्माचार्य, कृपण, दुराचारी, कसाई आदि सभी तरहके लोगोंके लिये १०८ हितकारी वचन लिखे हैं। श्रीमद्की पाँचवी रचना 'मोक्षमाला' है। यह सोलह वर्ष, पाँच महीनेकी आयुमें लिखी गयी थी। मोक्षमालामें तृष्णाको सब दुःखोंकी जननी बताया गया है। तृष्णाकी विचित्रताका किस सुन्दर ढंगसे मोक्षमालामें श्रीमद्ने वर्णन किया है, वह द्रष्टव्य है—
करोचली पड़ी डाढी डाँचातणो दाट वल्यो,

काली केशपटी विषे, श्वेतता छवाई गई।
सुंधवूँ, साँभलवूँ ने, देखवूँ ने मांडी वल्यू,
तेम दांत आवली ते, खरी के खवाई गई।
बली केड वांकी, हाड गया, अंग रंग भयो,
उठवानी आयु जता, लाकडी लेवाई गई।
अरे राजचन्द्र एम, युवानी हराई पण,
मन थी न राँड ममता मराई गई॥

अर्थात् मुँहपर झुर्रियाँ पड़ गयीं, गाल पिचक गये, काली केशकी पट्टियाँ सफेद पड़ गयीं; सुनने और देखनेकी शक्तियाँ जाती रहीं और दाँत सब गिर गये; कमर टेढ़ी हो गयी, हाड़-मांस सूख गये और शरीर काँटा हो गया, उसमें बैठनेकी शक्ति जाती रही और चलनेके लिये हाथमें लाठी लेनी पड़ गयी। अरे राजचन्द्र! इस तरह युवावस्थासे हाथ धो बैठे, परंतु फिर भी मनसे यह राँड ममता नहीं मरी।

विक्रम-संवत् १९४२—अठारह वर्षकी आयुमें आपने 'भावनाबोध' नामक ग्रन्थ लिखा। भावनाबोधमें अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, संसार, आश्रव, संवर, निर्जरा, और लोक-स्वरूप—इन १० भावनाओंका वर्णन किया गया है।

महात्मा गांधीका प्रिय भजन—
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्या रे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रन्थ जो।
सर्व सम्बन्ध नुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरीशुक व महत्पुरुषने पंथ जो ?

सर्व भावशी औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देह ते संयमहेतु होय जो ॥

अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्च्छान्व जोय जो ॥

इस भजनके बारेमें गांधीजी लिखते हैं—‘राजचन्द्र भाईकी १८ वर्षकी उम्रके निकले हुए अपूर्व उद्गारोंकी ये पहली दो कड़ियाँ हैं; जो वैराग्य इन कड़ियोंमें छलक रहा है, वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयसे प्रत्येक क्षणमें उनमें देखा है।’

१९ वर्षकी अवस्थामें श्रीमद् राजचन्द्रने १२० वचनोंका ‘वचनामृत’ लिखा है। वचनामृतके वचनोंकी मार्मिकता हृदयस्पर्शिनी है। जीवनको नया मोड़ देनेकी रामबाण औषधि है।

बीसवें वर्षमें श्रीमद् राजचन्द्रने प्रतिमाकी (मूर्तिपूजाकी) सिद्धिके ऊपर एक बृहद् निबन्ध लिखा था। इसमें आगम, इतिहास, पुरातत्त्व, परम्परा और अनुभवके प्रमाणसे प्रतिमा-पूजनका मण्डन किया है।

इसके बाद अन्य कई काव्य लिखे, जो तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें छपे थे।

श्रीमद् राजचन्द्रकी प्रौढावस्था यानी २९ वर्षकी अवस्थामें लिखा गया ग्रन्थ ‘आत्म-सिद्धि-शास्त्र’ है। यह आत्मज्ञानका अमोघ शास्त्र है। इसमें १४२ पद्य हैं। यह ग्रन्थ श्रीमद्ने श्रीसौभाग्यभाई, श्रीअचलभाई आदि मुमुक्षु तथा भव्य जीवोंके हितके लिये नडियादमें रहकर बनाया था। इस ग्रन्थमें (१) आत्मा है, (२) वह नित्य है, (३) वह निज कर्मका कर्ता है, (४) वह भोक्ता है, (५) मोक्ष है, (६) मोक्षका उपाय है—इन छः पदोंकी विस्तृत व्याख्या करके उसे सिद्ध किया है। इसमें कविता बड़ी ही उच्च कोटिकी है। षड्दर्शनका स्वरूप इस छोटी पुस्तकमें बहुत ही बारीकीके साथ आ गया है। इस ग्रन्थके हिंदी, अंग्रेजी एवं मराठीमें अनुवाद हो चुके हैं। इसका अंग्रेजी अनुवाद तो स्वयं गांधीजीने किया था।

श्रीमद् राजचन्द्रने कुछ काव्य हिंदीमें भी लिखे थे। उन्हें गांधीजीकी तरह नित्य डायरी लिखनेमें भी विशेष रुचि थी।

महान् तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक, धर्मोपदेशक और सुधारक

श्रीमद् राजचन्द्र महान् तत्त्वज्ञानी, असाधारण दार्शनिक और संत थे। भारतके समस्त मुख्य दर्शनोंका आपने गहरा अध्ययन एवं अभ्यास किया था। जैन-तत्त्वज्ञानके आप जिस तरह उच्च कोटिके विद्वान् थे, वेदान्त, सांख्य तथा बौद्धादि दर्शनोंमें भी आपका पाण्डित्य उतना ही विशाल एवं गहरा था। वे सभी धर्मोंका समानरूपसे आदर करते थे। ‘क्षीर-नीर’ के विवेकवत् सबसे साररूप ग्रहण करते थे। कुरान, जिंदअवेस्ता आदि पुस्तकें भी आप अनुवादके जरिये पढ़ गये थे।

श्रीमद् राजचन्द्रने ‘आत्मा’ को ही धर्मका स्वरूप समझा था। धर्मका अर्थ मत-मतान्तर नहीं। धर्म आत्माका गुण है और वह मनुष्यजातिमें दृश्य अथवा अदृश्य रूपसे विद्यमान है। धर्म वह साधन है, जिसके जरिये हम अपने-आपके ‘निज स्वरूप’ को स्वयं जान सकते हैं।

जगत्में जो भिन्न-भिन्न मत दिखायी देते हैं, वह केवल दृष्टिका भेदमात्र है। इन सबके मूलमें एक तत्त्व रहता है और वह तत्त्व आत्मधर्म है। अतएव जो निजभावकी सिद्धि करता है, वही धर्म उपादेय है।

ईश्वर-प्राप्तिके लिये सद्गुरु और सत्-शास्त्रका साधन नितान्त आवश्यक है। श्रीमद्ने जगह-जगह इन दोनोंको स्मरण किया है। श्रीमद्के रचित ‘श्रीसद्गुरु-भक्ति-रहस्य’ के २० दोहे प्रातः और सायं पठनीय एवं कण्ठाग्र करने योग्य हैं। एक दोहेमें आप कहते हैं—

प्रभु, प्रभु लय लगी नहीं, पड़्यो न सद्गुरु पाय।

दीठा नहीं निज दोष तो, तरिये कौन उपाय? ॥

और भी श्रीमद् कहते हैं—

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात।

सेवे सद्गुरुके चरन, सो पावे साक्षात् ॥

श्रीमद् राजचन्द्र दार्शनिकके सिवा उग्र सुधारक भी थे। रूढ़िवादियोंको आपने खूब आड़े हाथ

लिया है। वे 'देशहित' कार्य करनेके लिये लोगोंको उपदेश देते थे। स्त्री-शिक्षाके लिये आपने बहुत कुछ कहा था।

एकान्तवासी

श्रीमद् राजचन्द्रमें ज्यों-ज्यों आत्मविकास हो रहा था, त्यों-त्यों उन्हें एकान्त प्रिय लगने लगा। उन्होंने ईडरकी गुफाओंमें महीनों एकान्तवास किया था और निर्भय होकर गुजरातके अन्य पहाड़ों और वनोंमें भी आपने प्रवास किया था। वे गुप्त रहते थे, तो भी दर्शनाभिलाषी उनका पीछा करते रहते थे। ईडरमें रहते वक्त उन्होंने ईडरके राजाको भी प्रबोध दिया था।

अन्तमें श्रीमद् राजचन्द्र संसारके नाना मत-मतान्तरोंसे बहुत दुखी हो गये थे। श्रीमद् बहुत बार कहा करते थे कि 'मेरे शरीरमें चारों ओरसे कोई बरछी भोंक दे तो मैं उसे सह सकता हूँ; पर जगत्में जो झूठ, पाखण्ड, अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामपर जो अधर्म हो रहा है, उसकी बरछी मुझसे सही नहीं जाती।

इस तरह श्रीमद् राजचन्द्र संसार-तापसे संतप्त थे। अत्यधिक शारीरिक और मानसिक श्रमके कारण आपका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। स्वास्थ्य सुधारनेके लिये आपको धर्मपुर, अहमदाबाद, वढ़वाण कैप और राजकोटमें रखा गया और नाना प्रकारके इलाज कराये गये, पर सब निष्फल हुए और श्रीमद् राजचन्द्रकी आत्मा इस विनश्वर देहको विक्रम-संवत् १९५७ मिति चैत बदी ५ मंगलवारको दोपहरके २ बजे राजकोटमें छोड़कर प्रयाण कर गयी। देह-त्यागके ५-६ घंटा पूर्व श्रीमद्के अन्तिम उद्गार ये थे—'तुम निश्चिन्त रहना, यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होनेवाली है। तुम शान्त और समाधि-भाव वर्तन करना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देहद्वारा कही जा सकती, उसके कहनेका समय नहीं। तुम पुरुषार्थ करना, मनसुख; दुखी न होना, माँको ठीक रखना। मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूँ। इस तरह वह पवित्र देह और आत्मा

समाधिस्थ हो छूट गयी। लेशमात्र भी आत्माके छूट जानेके चिन्ह प्रकट प्रतीत नहीं हुए। लघुशंका, दीर्घशंका, मुँहमें पानी, आँखोंमें पानी अथवा पसीना कुछ भी नहीं था। उस समय श्रीमद्का समस्त परिवार तथा गुजरात-काठियावाड़के बहुत-से मुमुक्षु उपस्थित थे।

श्रीमद्के जीवनसे शिक्षा

श्रीमद् राजचन्द्रके सम्पूर्ण जीवन और ज्ञानसे हमें चार बातोंकी शिक्षा मिलती है—(१) शाश्वत वस्तु (आत्मा)—में तन्मयता, (२) जीवनकी सरलता, (३) समस्त संसारके साथ मैत्रीभाव, (४) अहिंसामय जीवन।

श्रीमद् राजचन्द्रकी अनुभव-वाणी

१-व्यवहारमें बालक बनो, सत्यमें युवक बनो और ज्ञानमें वृद्ध बनो।

२-राग करना नहीं, करना तो सत्पुरुषपर; द्वेष करना नहीं, करना तो कुशीलपर।

३-शूरवीर कौन? जो स्त्रीके नयन-कटाक्षसे घायल न हो।

४-सत्पुरुषोंका क्षणभरका भी समागम संसाररूपी समुद्रको पार करनेमें नौकारूप होता है—यह वाक्य महात्मा शंकराचार्यजीका है और वह यथार्थ ही मालूम होता है।

५-तू किसी भी धर्मको मानता हो, इसका मुझे पक्षपात नहीं। कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि जिस राहसे संसारमलका नाश हो, उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन करना।

६-प्रजाके दुःख, अन्याय और कर, इनकी जाँच करके आज कम कर। तू भी हे राजन्! कालके घर आया हुआ पाहुना है।

७-श्रीमंत हो तो पैसेके उपयोगको विचारना। उपार्जन करनेका कारण आज ढूँढ़कर कहना।

८-तू चाहे जो धन्धा करता हो, परंतु आजीविकाके लिये अन्यायसम्पन्न द्रव्यका उपार्जन नहीं करना।

९-'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' का नित्य जप करो।

मानव-जीवनकी सफलताका राजमार्ग

(श्रीरामवल्लभजी बियाणी)

वर्तमान युगमें सभी क्षेत्रोंमें प्रगति करते समय हो रही स्पर्धा एवं संघर्षमय जीवनसे, जो अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष और अहं भावसे भरा है, ऊबकर एक व्यक्तिके मनमें मनःशान्ति तथा सन्तोषमय जीवन व्यतीत करनेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हुई और वह एक बड़े पण्डितके पास गया तथा अपने मनकी दुविधा प्रकट करते हुए, मनःशान्ति एवं समाधान प्राप्त करनेका मार्ग पूछने लगा। पण्डितजीने कहा कि संसारकी नश्वर और क्षणभंगुर वस्तुओंको प्राप्त करनेकी इच्छासे मन हटाकर, शाश्वत एवं चिरन्तन शान्ति देनेवाले परमसत्यको प्राप्त करनेकी दिशामें मनको ले जाओ और इसके लिये श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थोंका अभ्यास करो। मुख्यतः गीता ग्रन्थ, जो सभी ग्रन्थोंका सार है— उसका मनन करो, सन्मार्गपर चलते रहो। अपना गृहस्थ सुचारु रूपसे निभाते हुए अपना व्यवसाय नेकीसे करो और मानव-सेवाको ईश्वर-सेवा मानकर चलो। इससे तुम्हारी मनोकामना सफल होगी। उन्हींके आदेशको शिरोधार्य मानकर उसने अपना जीवनक्रम वैसा ही बनाया।

ग्रन्थोंका मनन करनेपर उसे लगा कि जन्म-मृत्युके फेरेसे छुटकारा पाकर अखण्ड आनन्ददायी मुक्तिको प्राप्त करना—यही मानव जीवनका उद्देश्य होना चाहिये। यह ज्ञान होनेपर उसे मुक्तिका मार्ग बतानेवाले कोई पहुँचे हुए सन्तका मार्गदर्शन पानेकी उत्कण्ठा जाग उठी और भाग्यसे उसे ऐसे ही एक पहुँचे हुए सन्तका सान्निध्य प्राप्त हुआ, जो उस परमसत्यतक पहुँचे हुए थे। उनके सान्निध्यमें रहकर वह उनका कृपापात्र बना और जिज्ञासु होकर विनम्रभावसे जीवनमें मुक्ति पानेका मार्ग बतानेकी विनती की। उसकी जिज्ञासाको जानकर उन्होंने कहा कि जिस मार्गपर तुम चल रहे हो, उसपर निष्ठासे चलते रहो। कुछ आगे बढ़नेपर तुम्हें संयमका मार्ग मिलेगा और आगे समझदारीकी एक छोटी-सी गली मिलेगी। उसके आगे मार्गके दोनों ओर प्रलोभनकी सजी हुई दुकानें दृष्टिगत होंगी तथा आगे जाकर मायाका चौराहा मिलेगा एवं उसके

आगे अन्धश्रद्धाका एक बड़ा बाजार मिलेगा, किंतु तुम उधरकी ओर आगे न बढ़कर पहले जो समझदारीकी गली मिलती है, उसीमें प्रवेश करना। उसे पार करनेके पश्चात् तुम्हें वैराग्यका एक टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग मिलेगा, और आगे बढ़नेपर ज्ञान-मन्दिर नामकी एक सुन्दर वस्तु दृष्टिगत होगी। उसके कुछ आगे अध्यात्म नामका एक महल मिलेगा। वहाँ पहुँचनेपर महलके ठेकेदारोंके प्रहरी उस महलमें प्रवेश करनेसे तुम्हें रोकेंगे। उन्हें समर्पणका प्रमाणपत्र दिखाकर तुम आगे बढ़ जाना। कुछ समय चलनेपर तुम्हें चार भव्य-दिव्य भवन दृष्टिगत होंगे, जिनके नाम हैं—बैखरी, मध्यमा, परा और पश्यन्ती। चारों भवन अति सुन्दर हैं, किंतु तुम्हें उन्हींमेंसे परा नामक भवनमें प्रवेश करना है, उसकी दूसरी मंजिलपर स्वानन्दका एक कक्ष है। उसके द्वारपर पहुँचनेपर शरणागतिकी घण्टी बजाना, कृपाका द्वार अपने-आप खुल जायगा। अन्दर प्रवेश करनेपर ज्ञानका एक दिव्य आसन दिखेगा। उसपर समर्पण-भावसे ध्यान-मग्न होकर स्थानापन्न हो जाना और परम तत्त्वका चिन्तन करते रहना, समाधानकी थालीमें शान्तिरसका कुम्भ लेकर, मुक्ति तुम्हारे स्वागतमें खड़ी मिलेगी।

जीवन-मरणकी व्याधिसे छूटकर शाश्वत आनन्दकी अनुभूति प्राप्त करनेके लिये यह एक सीधा मार्ग है। वहाँपर पहुँचना सरल नहीं है। तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरके पुण्य एवं जगन्नियन्ताकी कृपा-दृष्टिसे ही यह सम्भव हो सकता है। यह सुनकर वह भाव-विभोर हो गया और उस चैतन्यमय साधु पुरुषके सामने नतमस्तक होकर उनके बताये मार्गपर चलनेका संकल्प लेकर आगे बढ़ गया। उसके मनकी सभी दुविधाएँ समाप्त होकर, उसे परमानन्दकी अनुभूति हुई। प्रत्येक मानवको इससे बोध लेना चाहिये और अपना जीवन सुखमय एवं सफल बनाना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवनकी सफलताका यही राजमार्ग है।

गोबर और गोमूत्रके तकनीकी उपयोग

(१)

गोबर और गोमूत्रसे रसोई गैस

चण्डीगढ़से लगभग ७० किलोमीटरकी दूरीपर सतलुज नदीके किनारे गाँव है बहादरपुर, जहाँ हर घरको रसोई गैस मुफ्तमें मिलती है। ऐसा सम्भव किया है गाँवके दिलबीरसिंह और उनके परिवारने। वे फार्मपर डेयरी चलाते हैं। उनके पास १२० गायें हैं। इन्हीं गायोंके गोबर और गोमूत्रको साइंटिफिक ढंगसे एकत्रित करके, उसमेंसे कार्बनडाई ऑक्साइड निकाली जाती है। बची हुई मीथेन गैसको प्रोसेस करके गाँवके हर घरको सप्लाई कर दी जा रही है।

उक्त गाँवमें ७५ घर हैं। हर घरमें गैस पहुँचानेके लिये दिलबीरसिंहने अपने खर्चसे पाइप लाइन डाली है। वे दिनमें तीन बार दो-दो घण्टेके लिये सभीके लिये गैस सप्लाई करते हैं। वे कहते हैं, 'हम गोबरको बर्बाद क्यों कर रहे हैं? क्यों गैस और बिजलीके लिये अरब मुल्कोंके हाथ जोड़ रहे हैं। हर गाँव ७० फीसदी खाद, बिजली और गैसके लिये आत्मनिर्भर हो सकता है।' दिलबीरके पास अभी १२० गायें हैं, वे इसे २०० तक ले जाना चाहते हैं। पहलेसे ही प्लानिंग करके उन्होंने अपना फार्म उसी तरहका बनाया है। गोबरसे गैस निकालनेके बाद बचा अवशेष खादमें बदल जाता है, जिसे वे बेचते हैं। उन्होंने बताया, गैसको सिलेण्डरोंमें भरकर भी सप्लाई किया जा सकता है, लेकिन उसके लिये भारत सरकारसे लाइसेंस लेनेकी जरूरत पड़ती है।

दिलबीर पैक्ड दूधकी सप्लाई करते हैं और बचे हुए दूधसे इण्टरनेशनल स्टैंडर्डकी मिठाइयाँ भी बनाते हैं। वे कहते हैं, डेयरी कारोबारी दूधको मुख्य बिजनेस बना रहे हैं, जबकि हमारे लिये दूध डेयरीका बायप्रोडक्ट है। डेयरी फार्मिंगसे हम ऊर्जा-सम्बन्धी जरूरतोंको पूरा कर सकते हैं।

आई०आई०टी० दिल्लीका फार्मूला गोबरको पहले ही दिन प्रोसेसिंगमें डालकर गैस निकालनेका है। दिलबीर सिंह दूसरे दिन इसे प्रोसेस करते हैं। ताकि पहले दिन आग बुझानेवाली कार्बन डाई ऑक्साइड निकल जाय। फिर इसमें रह जाती है सिर्फ मीथेन, जो ज्वलनशील है। जब इस बातका पता आई०आई०टी० दिल्लीके प्रोफेसरोंको चला तो उन्होंने दिलबीरका पूरा प्रोजेक्ट समझा और सराहा।

(२)

गोमूत्रसे जलनेवाली लालटेन

गोमूत्रसे बैटरीवाली लालटेन जलेगी, इस बैटरीको बिजलीसे चार्ज नहीं करना पड़ेगा, एसिडकी जगह गोमूत्रका इस्तेमाल होगा, बैटरी लो होनेपर चार्ज करनेके बजाय गोमूत्र बदलनेसे लालटेनमें लगी १२ वोल्टकी बैटरी पुनः फुल चार्ज हो जायगी और लाइट जलने लगेगी, यह अनोखा एवं बेहद उपयोगी प्रयोग किया है कामधेनु पंचगव्य एवं अनुसन्धान संस्थान अंजोराके डायरेक्टर डॉ० पी०एल० चौधरीने। बैटरीमें ५०० ग्राम गोमूत्रका उपयोगकर ४०० घण्टेतक ३ वॉटके एलईडी (लेड) बल्बसे रोशनी प्राप्त की जा सकती है। गोमूत्रसे लालटेनके इस प्रयोगको नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रायपुरने भी प्रमाणित किया है, डॉ० चौधरीने बताया कि इस लालटेनमें बैटरीके भीतर डाले जानेवाले एसिडकी जगह गोमूत्र डाला गया, इसमें किसी भी प्रकारका कोई केमिकल नहीं मिलाया गया है, न ही बैटरीमें कोई बदलाव किया गया है, खास बात यह है कि बैटरी सिर्फ देशी गायके गोमूत्रसे ही कार्य करेगी, इसे मोटर साइकिलकी पुरानी बैटरीका उपयोगकर विकसित किया गया है।

उन्होंने बताया कि लालटेनमें जब बल्बकी रोशनी कम होने लगती है तो गोमूत्रको बदलना होता है, यह चमत्कारी प्रयोग है, जो आदिवासी या अन्य इलाकों, जहाँ बिजलीकी परेशानी होती है, उन क्षेत्रोंमें काफी उपयोगी साबित होगा। उन्होंने इस प्रयोगको पेटेन्टकर अनुसन्धानको आगे भी जारी रखनेकी बात कही, एन०आई०टी० रायपुरने इस प्रयोगको पर्यावरण-मित्र और गैर परम्परागत साफ-सुथरी ऊर्जाका स्रोत बताते हुए इसे ग्रामीण क्षेत्रोंके लिये काफी उपयोगी बताया है।

एसिडकी जगह गोमूत्रसे चलनेवाली इस बैटरीके बारेमें डॉ० पी०एल० चौधरीने बताया कि बैटरीसे लाइट बन्द होनेपर यह इमरजेंसी लाइटकी तरह कार्य करेगी, इससे मोबाइलको भी चार्ज किया जा सकता है। गोमूत्र बैटरीद्वारा ऊर्जा मिलनेसे बिजलीकी खपत कम होगी और किसानोंको पशुपालनके लिये प्रेरणा मिलेगी। डॉ० चौधरीने बताया कि यह कमाल केवल देशी नस्लकी गायके मूत्रमें ही सम्भव है। [प्रेषक—श्रीअश्वनी कुमार पटेल]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

एक दीर्घजीवी महात्मा

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र समयपर मिल गया था। भारतवर्ष रत्नोंकी खानि है, पता नहीं, यहाँ कितने वयोवृद्ध होंगे। मुझे एक परम भक्त वैष्णव महापुरुषके दर्शनका सौभाग्य कई बार हुआ था। उनका शुभ नाम था, पण्डित रसिकमोहन विद्याभूषण। शुभ्र गौर शरीर, साक्षात् शान्त शंकरकी-सी मूर्ति, विशाल उन्नत ललाट, लम्बी स्वर्ण-प्रतिम जटा, अपूर्व ज्योतिसे चमकते हुए प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्र, स्नेह और वात्सल्यसे पूरित मधुर वाणी, वैष्णव शास्त्रका विशाल पाण्डित्य, अधिक क्या, उनके एक-एक गुणके सामने भक्ति-प्रणत होकर मस्तक झुक जाता था। पहले-पहल झूसीमें पूज्य ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराजके अखण्ड कीर्तनमें उनके दर्शन हुए थे। पं० श्रीचिम्पनलालजी गोस्वामी मेरे साथ थे। गोस्वामीजी कीर्तन कराने लगे, इतनेमें ही आसनपर विराजित विद्याभूषण महाशय उठे और गोस्वामीजीका हाथ पकड़कर नाचने लगे! उस समय भी उनकी अवस्था सौ वर्षसे ऊपर थी। कलकत्तेमें रहते थे। उसके बाद भी मैंने कई बार उनके दर्शन किये। वे 'कल्याण'में लिखते भी थे। वे प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनशास्त्रके पण्डित थे। संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी तथा उड़िया भाषापर आपका पूर्ण अधिकार था। कई वर्ष पूर्व वे गोलोकवासी हुए। उस समय उनकी अवस्था एक सौ नौ वर्षकी थी। उन्होंने अपने सुदीर्घ भजनमय जीवनमें वैष्णव जगत्को बँगलाभाषामें जो बीसों ग्रन्थरत्नोंका दान किया है, वह सचमुच अपूर्व है। वे इधर प्रायः बीस सालसे सोये नहीं थे। रातों जगकर नाम-जप किया करते थे। कहते हैं कि अन्तकालमें उन्होंने कहा—'देखो-देखो! कैसे सुन्दर दो बालक नाच रहे हैं। कितनी सुन्दर ढोल बज रही है, अहा! इतना सुन्दर ढोलका बजना तो मैंने कभी नहीं सुना, बालकोंका ऐसा नृत्य तो मैंने कभी नहीं देखा। ये मुझे बुला रहे हैं, जल्दी मेरी नाम-जपकी

माला दो।' किसी भक्तने नाम-जपकी माला दी। उन्होंने उसे तुरंत हृदयसे लगा लिया और महान् योगिराजकी भौति परमधाममें चले गये।

इनके जैसे, अन्य कोई महात्मा इतनी उम्रके इस समय कहीं हैं या नहीं, मुझे पता नहीं। बरहजमें भक्तराज परमहंस श्रीअनन्तप्रभुजी भी बहुत बड़ी अवस्थामें साकेत पधारे थे और कहते हैं, उनके रोम-रोमसे भगवन्नामकी ध्वनि निकला करती थी। प्रसिद्ध राजनीतिक नेता बाबा राघवदासजी इन्हींके शिष्य थे।

आजकल प्रकटमें ऐसे महात्माओंका अभाव-सा हो गया है। शायद इस प्रकारके लोगोंके निर्माणका युग ही चला गया है!

(२)

जगत्की असारता

आपका पत्र मिला। आपके अध्ययन, रुचि तथा विचारोंका परिचय मिला। इधर कुछ वर्षोंसे आपके मनमें जो तरह-तरहकी शंकाएँ उठती और आपको चिन्तित कर देती हैं, वे वास्तवमें भ्रम या वहम हैं। आप इसे मनसे निकाल दें। एक दिन सम्पूर्ण जगत्का, सूर्य और चन्द्रमाका तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका भी लय हो जायगा। यह विचार जो आपके मनमें उठा, इससे तो आपको और प्रसन्न होना चाहिये; क्योंकि यह तो समस्त शास्त्रों और पुराणोंका सिद्धान्त है, संतों-महात्माओंका अनुभव है तथा प्रतिक्षण जगत्का जो संहार हो रहा है, उसके आधारपर अनुमान किये जानेयोग्य अकाट्य सत्य है। ऐसा सत्य जो अनायास आपके मनमें प्रकट हुआ, इससे आपको सन्तोष होना चाहिये। यद्यपि यह बात सब जानते हैं, सब लोग अनुभव करते हैं, किंतु किसीका इस ओर ध्यान नहीं जाता, इसलिये लोग प्रमादमें पड़े-पड़े ही जीवन खो देते हैं। कल्याणका एक सुन्दर अवसर हाथसे निकल जाता है।

जिस बड़भागीके ध्यानमें जीवनकी असारता और जगत्की क्षणभंगुरताका बोध हो जाय, उसको सावधान

होकर अपने कल्याणके साधनमें लग जाना चाहिये। पापसे बचें, भगवान्का नाम लें, उनका ही ध्यान करें, दान और सेवासे दूसरे लोगोंको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करें, जिससे मृत्युके समय पछताना न पड़े। मृत्युसे डर क्यों हो? जो बात अवश्य होनेवाली है, उसको रोक कौन सकता है? यह मिट्टीकी काया सदा चल नहीं सकती। एक-न-एक दिन गिरेगी ही। जब मृत्यु निश्चित है तो आज हो या कल, इसकी चिन्ता क्यों की जाय? हार्टफेल होनेसे होगी या और किसी बीमारीसे, इसके लिये परेशान होनेकी क्या आवश्यकता? जब मृत्यु होनेवाली होगी, हो जायगी। जबतक नहीं हुई है, तबतक इस शरीरसे, इस मनसे, इस बुद्धि और विद्यासे पूरा लाभ उठा लिया जाय। यही अपनी सावधानी है, यही अपना कर्तव्य है।

इसके अतिरिक्त मृत्यु कोई चीज नहीं है। वस्त्र नहीं बदला, शरीर बदला। आत्मा तो अजर-अमर है। जैसे कपड़ा पुराना होता और फटता है, उसी प्रकार शरीर भी बूढ़ा होता और नष्ट होता है। इससे आत्माकी या आपकी मौत कभी नहीं होती। इस प्रकार विचार करनेसे आपका भय दूर हो सकता है। इसके लिये आप प्रतिदिन गीताके द्वितीय अध्यायका अर्थसहित पाठ करें। रामनामका जप भी लाभकर है। आप भय और वहमको तो एकदम मनसे निकाल ही दीजिये। शरीरमें अधिक आसक्ति और भोगोंके प्रति अधिक लोभ होनेसे ही मनुष्य मृत्युसे डरता है। किंतु है यह मूर्खता। आप-जैसे पढ़े-लिखे लोग इस मूर्खतामें पड़ें—यह शोभा नहीं देता। यह अज्ञान ही मनुष्यको कष्ट देता और नरकमें गिराता है। आप इससे बचें और भगवान्का स्मरण-भजन करके जीवनको सफल बनायें। शेष प्रभुकी कृपा!

(३)

मुक्ति और भगवत्सेवा

सप्रेम हस्मरण। आपके पत्रका उत्तर बहुत विलम्बसे जा रहा है। दूसरे कार्योंमें लगे रहनेसे इधर ध्यान देनेका अवसर न मिला। अतः कितने ही पत्रोंके उत्तरमें देर हो गयी। इसके लिये मनमें विचार न करेंगे।

(१) आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—भागवतमें पाँच प्रकारकी मुक्ति बतायी गयी है। सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य तथा एकत्व। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—भगवान्के समान ऐश्वर्यसे युक्त होना 'सार्ष्टि मुक्ति' है। भगवान् जहाँ भी रहें, उनके समीप रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो, यह 'सामीप्य मुक्ति' है। भगवान्के धाममें रहनेका स्थान प्राप्त होना ही 'सालोक्य मुक्ति' है। भगवान्का जैसा स्वरूप है, वैसा ही अपना भी हो जाना 'सारूप्य मुक्ति' है तथा भगवान्के स्वरूपमें लीन होकर उनसे एकाकारता प्राप्त कर लेना, यह 'एकत्व' या 'सायुज्य मुक्ति' है।

(२) यद्यपि इन सबमें किसी-न-किसी रूपमें भगवत्सान्निध्य प्राप्त रहता है और भक्त भगवान्का मिलन सुख चाहते ही हैं, तथापि इन सबमें आत्मसुखको ही प्रधानता दी गयी है। भगवान्के समान ऐश्वर्य, लोक, रूप तथा उनका सामीप्य पाकर जो स्वयं सुखी होना चाहता है, वह मोक्षका पात्र है। किंतु जो अपने सुखको महत्त्व नहीं देता, जो भगवान्को सुख पहुँचाकर ही सुखी होता है, उसके लिये उनकी सेवा ही सबसे बड़ी वस्तु है। अतएव 'दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।' प्रेमी भक्तजन देनेपर भी इन मुक्तियोंको ग्रहण नहीं करते। मुक्तिमें भोग है और सेवामें त्याग, इसलिये सेवाका ही स्थान ऊँचा है।

(३) जहाँ मुक्तियोंका भी तिरस्कार हो जाता है, ऐसी सेवाका आदर्श हैं—गोपियाँ 'यथा व्रजगोपिका-नाम्' (नारदभक्तिसूत्र)। उनका सारा जीवन ही सेवामय है। उनका चलना-फिरना, सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना, वस्त्राभूषण धारण करना आदि सब कुछ श्रीकृष्णके ही लिये है। वे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाकर उन्हें आनन्दित देखकर ही सुखी होती हैं। प्रियतमका सुख ही उनका सुख है। वे अपनेको श्रीकृष्णकी सेवापर न्यौछावर कर चुकी हैं। जहाँ तन, मन, प्राण, आत्मा और उससे होनेवाले सारे कार्यकलाप भगवान्को समर्पित हो जाते हैं, वहीं सच्ची सेवा बन पाती है। शेष सब प्रभुकी कृपा है।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।३६ बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ११।४५ बजेतक	१८ जून	मूल दिनमें ११।४५ बजेतक।
द्वितीया " २।२५ बजेतक	बुध	पू०षा० " १।११ बजेतक	१९ "	भद्रा रात्रिमें ३।२ बजेसे, मकरराशि रात्रिमें ७।३९ बजेसे।
तृतीया " ३।३९ बजेतक	गुरु	उ०षा० " ३।४ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें ३।३९ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२३ बजे।
चतुर्थी सायं ५।१८ बजेतक	शुक्र	श्रवण सायं ५।१९ बजेतक	२१ "	सायन कर्कराशिका सूर्य रात्रिशेष ४।११ बजे।
पंचमी रात्रिमें ७।१२ बजेतक	शनि	धनिष्ठा रात्रिमें ७।५० बजेतक	२२ "	कुम्भराशि प्रातः ६।३५ बजेसे, आर्द्राका सूर्य रात्रिमें १२।५९ बजे, पंचकारम्भ प्रातः ६।३५ बजे।
षष्ठी " ९।१४ बजेतक	रवि	शतभिषा " १०।२७ बजेतक	२३ "	भद्रा रात्रिमें ९।१४ बजेसे।
सप्तमी " ११।१३ बजेतक	सोम	पू०भा० " १।१ बजेतक	२४ "	भद्रा दिनमें १०।१४ बजेतक, मीनराशि सायं ६।२२ बजेसे।
अष्टमी " १।२१ बजेतक	मंगल	उ०भा० " ३।२२ बजेतक	२५ "	श्रीशीतलाष्टमीव्रत, मूल रात्रिमें ३।२२ बजेसे।
नवमी " २।२२ बजेतक	बुध	रेवती अहोरात्र	२६ "	x x x x x
दशमी " ३।१९ बजेतक	गुरु	रेवती प्रातः ५।२२ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें २।५१ बजेसे रात्रिमें ३।१९ बजेतक, मेषराशि प्रातः ५।२२ बजेसे, पंचक समाप्त प्रातः ५।२२ बजे।
एकादशी " ३।४७ बजेतक	शुक्र	अश्विनी " ६।५५ बजेतक	२८ "	योगिनी एकादशी व्रत (सबका), मूल प्रातः ६।५५ बजेतक।
द्वादशी " ३।४४ बजेतक	शनि	भरणी दिनमें ८।१ बजेतक	२९ "	वृषराशि दिनमें २।९ बजेसे।
त्रयोदशी " ३।११ बजेतक	रवि	कृत्तिका " ८।३५ बजेतक	३० "	भद्रा रात्रिमें ३।११ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " २।१० बजेतक	सोम	रोहिणी " ८।४० बजेतक	१ जुलाई	भद्रा दिनमें २।४१ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें ८।२९ बजेसे।
अमावस्या " १२।४३ बजेतक	मंगल	मृगशिरा " ८।१७ बजेतक	२ "	भौमवती अमावस्या

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।५६ बजेतक	बुध	आर्द्रा दिनमें ७।३२ बजेतक	३ जुलाई	कर्कराशि रात्रिमें १२।४३ बजेसे।
द्वितीया " ८।५२ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु प्रातः ६।२८ बजेतक	४ "	श्रीजगदीश-रथयात्रा, मूल रात्रिशेष ५।६ बजेसे।
तृतीया सायं ६।३४ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा रात्रिमें ३।३३ बजेतक	५ "	सिंहराशि रात्रिमें ३।३३ बजेसे।
चतुर्थी दिनमें ४।९ बजेतक	शनि	मघा " १।५५ बजेतक	६ "	भद्रा प्रातः ५।२२ बजेसे दिनमें ४।९ बजेतक, मूल रात्रिमें १।५५ बजेतक। वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पुनर्वसुका सूर्य रात्रिमें २।३३ बजे।
पंचमी " १।४० बजेतक	रवि	पू०फा० " १२।१५ बजेतक	७ "	x x x x x
षष्ठी " ११।१२ बजेतक	सोम	उ०फा० " १०।४३ बजेतक	८ "	कन्याराशि प्रातः ५।५२ बजेसे।
सप्तमी " ८।५० बजेतक	मंगल	हस्त " ९।१० बजेतक	९ "	भद्रा दिनमें ८।५० बजेसे रात्रिमें ७।४५ बजेतक।
अष्टमी प्रातः ६।३९ बजेतक	बुध	चित्रा " ७।५५ बजेतक	१० "	तुलाराशि दिनमें ८।३३ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ३।८ बजेतक	गुरु	स्वाती " ७।१ बजेतक	११ "	x x x x x
एकादशी " १।५५ बजेतक	शुक्र	विशाखा सायं ६।२४ बजेतक	१२ "	भद्रा दिनमें २।३२ बजेसे रात्रिमें १।५५ बजेतक, श्रीहरिशयनी एकादशी-व्रत (सबका), वृश्चिकराशि दिनमें १२।३४ बजेसे।
द्वादशी " १।८ बजेतक	शनि	अनुराधा " ६।१४ बजेतक	१३ "	मूल सायं ६।१४ बजेसे।
त्रयोदशी " १२।५२ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा " ६।३४ बजेतक	१४ "	धनुराशि सायं ६।३४ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " १।५ बजेतक	सोम	मूल " ७।२२ बजेतक	१५ "	भद्रा रात्रिमें १।५ बजेसे, मूल रात्रिमें ७।२२ बजेतक।
पूर्णिमा " १।५२ बजेतक	मंगल	पू०षा० " ८।४२ बजेतक	१६ "	भद्रा दिनमें १।२९ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें ३।९ बजेसे, पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, खण्डचन्द्रग्रहण प्रारम्भ—रात्रिमें १।३१ बजे एवं मोक्ष रात्रिशेष ४।३० बजे।

कृपानुभूति

भगवान् शिवकी मूक कृपा

घटना २२ अगस्त सन् २०१४ ई०को मेरे स्कूलमें घटित हुई, जो इस प्रकार है—

मेरे स्कूलमें एक सुनीता नामकी अध्यापिका हैं, जो स्वभावसे अत्यन्त शालीन हैं। वे अपने पति और दो बेटोंके साथ गाजियाबादके प्रताप विहारमें रहती हैं। इनके पतिदेव भगवान् शिवके परम भक्त हैं और हमेशा घरके समीप स्थित प्राचीन दुग्धेश्वरनाथके मन्दिरमें पूजनकर दिनकी शुरुआत करते हैं।

एक दिनकी बात है, उनका बड़ा बेटा बहुत शैतानी कर रहा था, जिससे परेशान हो, पड़ोसियोंने शिकायत की। इसपर अध्यापिका यानी बच्चेकी माँने क्रोधित हो बच्चेको बहुत डाँट दिया और बच्चेसे कहा कि आज पापाको आने दो, तुम्हारी शिकायत करूँगी। तुम ऐसे नहीं सुधरोगे।

थोड़ी ही देर बाद बच्चेने फिर नीचे जाकर खेलनेकी जिद की और वह नीचे चला गया। कुछ समय पश्चात् सुनीताजीने सोचा कि 'चलूँ, देख लूँ कि वह कहाँ खेल रहा है, कहीं फिर कोई शरारत न कर रहा हो।' यह सोचकर उन्होंने नीचे जाकर देखा तो वह दिखा नहीं। फिर वे कुछ घबरायीं और मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'कहाँ चला गया, वह तो और कहीं जाता नहीं है।' फिर वे वहाँ चारों ओर खोजने लगीं, सभी पड़ोसियोंके यहाँ भी पूछ लिया, परन्तु उसका कहीं पता न चला। घबराकर वे रौने लगीं और अपने पतिदेवको फोन किया। पतिके दफ्तर हापुड़ रोडपर स्थित था, जो वहाँसे थोड़ा दूर था। बहरहाल पतिदेवको जानकारी होते ही वे भी जल्दीसे घर पहुँचे। फिर खोज-बीन शुरू हुई। उन्होंने भी सभी जगह पुनः जाकर देखा, साथ-ही-साथ अपने सारे मित्रों एवं जहाँ भी बच्चा जा सकता था, पता किया, परन्तु कुछ भी जानकारी न मिल सकी। तब वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने उन्हें पुलिसको सूचना देनेके लिये सलाह दी। परन्तु वे पहले पुलिस स्टेशन न जाकर अपनी पत्नीसहित दुग्धेश्वरनाथ-मन्दिर गये और वहाँ पहुँचते ही जलसे अभिषेक करना प्रारम्भ कर दिया। उनकी आँखोंसे अश्रुकी धारा बहने लगी। ऐसा लगा जैसे कि अश्रुओंसे

ही भगवान् शिवका अभिषेक होगा। इसी बीच उनके मनमें न जाने कैसे ऐसा महसूस हुआ कि रेलवे स्टेशन जाना चाहिये, वहीं बच्चा मिल जायगा और ये भावना उत्तरोत्तर दृढ़ होने लगी। पतिदेवने एकाएक सुनीताजीसे कहा कि हमें शीघ्र रेलवे स्टेशन चलना चाहिये, पर सुनीताजी इसके लिये बिल्कुल तैयार न थीं। वे पुलिसकी मदद लेना चाहती थीं, उन्होंने कहा—'नहीं, हमें तुरन्त पुलिस स्टेशन चलना चाहिये, वहाँ ही चलना उचित है।' इधर पतिदेवको रेलवे स्टेशन पहुँचनेके अतिरिक्त कुछ न सूझ रहा था। वे अन्तर्मनसे भगवान्से कातर भावसे प्रार्थना कर रहे थे। वे मन-ही-मन कह रहे थे कि मैंने कभी किसीके साथ कोई बुरा नहीं किया, आखिर मेरे साथ आज ये क्या हो रहा है?

अन्ततः सुनीताजी उनकी जिदके आगे विवश हो गयीं और वे दोनों रेलवे स्टेशन गये। वहाँ पहुँचकर जब स्टेशन मास्टरसे सारी बात बतायी गयी तो स्टेशन मास्टरने वहाँ कई बार बच्चेके लिये घोषणा करवायी। तकरीबन आधे घंटे व्यतीत हो गये, किन्तु कुछ पता न लग सका। फिर पति-पत्नी मायूस होकर घर लौट आये। अभी कुछ ही समय बीता होगा कि स्टेशन मास्टरका फोन आया कि आपलोग शीघ्रातिशीघ्र स्टेशन पहुँचिये। ये लोग जल्दीसे वहाँ स्टेशन पहुँचे और स्टेशन मास्टरके कमरेमें जैसे ही प्रवेश किया तो देखते हैं कि वहाँ इनका बच्चा बैठा है। दोनोंने दौड़कर अपने बच्चेको गलेसे लगा लिया। फिर बच्चेसे बहुत पूछा गया कि तुम यहाँ कैसे पहुँचे तो वह बता न पाया कि वह स्टेशन कैसे पहुँचा। स्टेशनमास्टरने बताया कि यह सम्मोहित अवस्थामें बैठा था, इंजनकी सीटीकी तेज आवाज और अपना नाम सुनकर यह होशमें आया, फिर अकेले पूछते हुए मेरे कमरेमें आया और मैंने आपको फोन करके बुलाया।

इस घटनाको मैं भगवान् शिवकी कृपा ही मानती हूँ कि उन्होंने सुनीताके पतिके अन्तःकरणमें पुलिसस्टेशन न जाकर रेलवे स्टेशन जानेकी प्रेरणा की।—सोमा

पढ़ो, समझो और करो

हरे पीपलको काटनेका फल

[पीपल संसारको प्राणवायु प्रदान करनेवाला वृक्ष है। गीतामें भगवान् ने इसे अपनी विभूति कहा है— 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्।' अपने धर्मग्रन्थों एवं लोकविश्वासके अनुसार पीपलमें देवताओंका निवास है और उसे काटना नहीं चाहिये, अन्यथा इसके दुःखद परिणाम होते हैं। यहाँ इसी भावबोधकी एक प्राचीन किंतु सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है, जो आज के पर्यावरण-संरक्षणके प्रसंगमें सर्वथा प्रासंगिक है—सम्पादक]

सन् १९५७ ई०के जून माहकी बात है, पिलखुआमें हमारा एक मकान बन रहा था। काम करनेवालोंमें एक राज था, जो जातिका मुसलमान था। उसका नाम था मियाँ सईदखाँ, जो पिलखुआका ही रहनेवाला है। एक दिन दोपहरकी बात है, किसीने हमें मियाँ सईदखाँके सामने आकर सुनाया कि अमुक जगह सरकारकी ओरसे बन्दर पकड़े जा रहे हैं और पकड़नेवाले उन्हें बड़ी बुरी यातनाएँ देकर पकड़ते हैं और फिर उन्हें पकड़-पकड़कर पिंजरेमें बन्द करके अमेरिका मरनेके लिये भेज दिया जाता है। वहाँ वैज्ञानिक पहले इन्हें रोगोंके इन्जेक्शन लगाकर बीमार बनाते हैं, फिर इनपर दवाइयोंके प्रयोग होते हैं। कुछपर चीर-फाड़के प्रयोग भी होते हैं। ये प्रयोग तबतक चलते रहते हैं, जबतक कि उनकी मृत्यु नहीं हो जाती। यह सुनकर सभीको बड़ा दुःख हुआ। इसपर मिस्त्री मियाँ सईदखाँने कहा—'भक्तजी! यह तो बन्दरोंकी बात है, उन्हें दुःख होता ही है और जब दुःख होता है, तब वे रोते-चिल्लाते हैं और कीं-कीं करते हैं। जहाँपर बन्दर पकड़े जाते हैं, वहाँ बड़ी भारी बीमारी—महामारी फैलती देखी गयी है। यद्यपि हम जातिके मुसलमान हैं, तो भी जो बात सत्य होगी, वह कहनी ही पड़ेगी। यह तो हुई बन्दरोंकी बात, हमने तो एक हरे पीपलके वृक्षकी एक बड़ी विचित्र घटना अपनी आँखोंसे देखी है और अनुभव किया है कि पीपलमें भी हमारी-तुम्हारी तरह जीव होता है तथा हमारी-तुम्हारी भाँति ही उन्हें भी सुख-दुःखका अनुभव होता है। वह बोलता भी है और उसके काटनेका फल—सतानेका, विश्वासघात करनेका फल भी तुरंत मिलता है। वाकईमें वह देवता है, यह सब मैंने अपनी आँखोंसे देखा है।'

अब तो हमें तथा और सभी लोगोंको बड़ी उत्सुकता हुई और हमने कहा—'अच्छा! मियाँ सईदखाँ, जो भी तुमने अपनी आँखोंसे देखा हो, वह सच-सच ज्यों-का-त्यों हमें सुनाओ।'

सईदखाँने कहा—'सुनिये! जो हमने अपनी आँखों देखा है, वही आपको सुनाते हैं—वह भी और कहींकी नहीं, इसी पिलखुआके पासकी और बिलकुल हमारी आँखों-देखी सत्य घटना है—

एक बार हमारे एक मुसलमान साथी बढ़ईने, जिसका नाम दलवीरखाँ था, एक राजपूतसे एक बिलकुल हरा पीपल खरीदा और उसकी कीमतके सौ रुपये राजपूतको दे दिये। उसने एक दूसरा हिस्सेदार भी कर लिया, जिसका नाम था इसाकखाँ बढ़ई। दलवीरखाँ और इसाकखाँमें आपसमें यह तय हुआ कि दोनों जने मिलकर पीपलको काट लेंगे और उसमें जो नफा होगा, दोनों मिलकर बाँट लेंगे। काटनेका दिन नियत किया गया।

जब पीपलके काटनेका दिन आया, तब उसके काटनेसे ठीक पहले दिनकी रात्रिको दलवीरखाँको स्वप्नमें वही पीपल दिखलायी दिया और उसने दलवीरखाँसे कहा—'दलवीर! तू मुझे काटे मत, सताये मत। तू मुझे अपना समझकर छोड़ दे और तूने जो मेरे मोल लेनेमें सौ रुपये उस राजपूतको दिये हैं, वे सब रुपये और जो तुझे मेरे काटनेपर मुनाफेके रुपये मिलते, वे भी तुझे मिल जायेंगे। मेरी जड़में अमुक जगह सोना रखा है, तू जाकर खोदकर उसे निकाल ले और बेचकर रुपये कर ले; पर तू मुझे काटे मत। मुझे जीवन दान कर दे।' दलवीरखाँ बढ़ई जागा और स्वप्नकी बात याद करके अचरजमें डूब गया।

उसने आजतक अपने जीवनमें कभी ऐसा स्वप्न पहले देखा ही नहीं था। पहले तो उसने स्वप्नको झूठा समझा और उसे विश्वास नहीं हुआ कि कहीं पीपलमें भी जान होती है और पीपलको भी सुख-दुःखका अनुभव होता है तथा पीपल बोलता है। पर बादमें उसने सोचा—चलो, चुपचाप चलकर देखें, सोना मिलता है या नहीं। इसमें हमारा बिगड़ता भी क्या है; मिल गया तो ले आयेंगे, नहीं तो चले आयेंगे। ऐसा विचार करके वह उठा और चुपचाप उसी पीपलके पास जा पहुँचा। उसने पीपलके बताये स्थानपर खोदकर देखा तो सचमुच उसका स्वप्न बिलकुल सत्य निकला और उसे मिट्टीमें दबी पीली चमचमाती सोनेकी सलाख प्राप्त हुई। अब तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा और वह फूला न समाया। हरे वृक्षोंमें भी जान होती है और वे भी हमारी ही भाँति सुख-दुःखका अनुभव करते हैं, यह उसे पक्का निश्चय हो गया। वह घरपर आया और अपनी बीबीको भी सब बातें बता दीं। पर फिर उसके मनमें पाप सवार हुआ और उसने मानवतासे गिरनेका निश्चयकर 'लालच बुरी बलाय' के अनुसार सोचा कि 'यह बात यदि मेरे दूसरे हिस्सेदारको मालूम हो गयी तो वह भी इसमेंसे आधे रुपये माँगेगा। इसलिये इस बातको गुप्त रखना ही अच्छा है, किसीको भी सुनाना ठीक नहीं।' अतः उसने किसीको भी यह बात नहीं बतायी, उसे बिलकुल गुप्त रखा।

अब पीपलके काटनेका जो दूसरा दिन नियत किया गया था, वह जब आया, इसाक अपनी कुल्हाड़ी लेकर दलवीरखाँके पास पहुँचा। यह दलवीर इतना कृतघ्न निकला और मानवतासे इतना गिरा कि जब पीपलने इससे प्राणोंकी भिक्षा माँग ली थी और बदलेमें इसे भरपेट सोनेके रूपमें रुपये दे दिये थे, तब भी इसे संतोष नहीं हुआ और तनिक भी दया नहीं आयी। इसका बुरा समय भी आनेवाला था, इसीलिये उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। वह कुछ भी विचार न करके अपनी कुल्हाड़ी उठा इसाकके साथ हो लिया। वृक्ष काटनेसे पहले बढ़ई

लोग गुड़ बाँटा करते हैं। हम भी उस दिन वहाँ जा पहुँचे थे और सोचा—चलो, मेलके हैं, रास्तेमें मिलते चलेंगे और गुड़ मिलेगा, उसे ले लेंगे। हम जाकर बैठ गये। वे दोनों आये और उस पीपलकी कटाई लगानेको तैयार हो गये। ज्यों ही दोनों बढ़इयोंने पीपलको काटनेके लिये कुल्हाड़ी चलायी कि कुल्हाड़ीके लगते ही एकदम पीपलके अन्दरसे खूनके फव्वारे छूटने लगे और आस-पास खड़े सभी मनुष्योंके कपड़े खूनसे भीग गये। यह देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। किसीने भी आजतक अपने सारे जीवनमें ऐसी महान् आश्चर्यजनक घटना न देखी थी, न सुनी ही थी। वृक्षोंमेंसे इस प्रकार खूनके फव्वारे छूटना एकदम नयी घटना थी। दलवीरखाँ और इसाकखाँने अपने जीवनमें एक नहीं, इससे पहले सैकड़ों ही हरे दरख्त काटे होंगे; पर आजतक किसी भी वृक्षमेंसे इस प्रकार खूनकी धारा बहती हुई और छूटती हुई नहीं देखी थी। यह क्या हुआ और ऐसा क्यों हुआ, यह रहस्य किसीकी भी समझमें नहीं आया। दलवीरखाँ बढ़ईको तो सब मालूम था, पर वह तो मानवताको तिलांजलि देकर और लोभके वशीभूत हो इस असली रहस्यको किसीको बतानेके लिये तैयार नहीं था। वह सबके सामने बिलकुल ऐसा बना रहा कि जैसे औरोंकी भाँति यह भी कुछ नहीं जानता और उसे भी किसी बातका पता नहीं है।

होनी बड़ी प्रबल है। जो होना होता है, होकर ही रहता है। पीपलके द्वारा इस प्रकार सबके सामने प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाये जानेपर भी दलवीरको होश नहीं आया और वह काटनेसे बाज नहीं आया। उसने कोई परवा नहीं की और फिर कुल्हाड़ी चलाना—काटना शुरू कर दिया। दलवीरखाँ बढ़ईके एक ही लड़का था और वह बिलकुल अच्छा तथा बड़ा तन्दुरुस्त था। उसके किसी भी प्रकारकी बीमारीका नाम भी नहीं था। पर पीपल काटने, पीपलके साथ विश्वासघात करनेका बुरा फल आज उसे भोगना था—**'तुलसी हाय गरीबकी कभी न खाली जाय।'** ज्यों-ज्यों जंगलमें कुल्हाड़ी चलायी जा रही थी

और पीपलको काटा जा रहा था, त्यों-ही-त्यों दलवीरखाँके इकलौते लड़केकी अकस्मात् हुई बीमारी बढ़ती जाती थी और ज्यों ही शामतक पीपल पूरा काटा गया, त्यों ही शामतक वह लड़का भी मर गया। अब तो सारे गाँवमें हा-हाकार मच गया। जो लड़का कलतक बिलकुल चंगा था, वह एकदम कैसे मर गया, इस रहस्यको कोई भी नहीं समझ सका और सारा गाँव उसके घरपर इकट्ठा हो गया। दलवीरखाँकी स्त्रीको इस सत्य घटनाका पता था कि किस प्रकार मेरे पापी पतिने पीपलके साथ विश्वासघात किया है। उसने सोचा कि पीपलके द्वारा स्वप्नमें अपने प्राणोंकी भीख माँगनेपर भी और बदलेमें सोनेकी सलाख दे देनेपर भी इसने पीपलको नहीं छोड़ा तथा मानवतासे गिरकर घोर दानवताका काण्ड किया, उसीका यह महान् भयंकर दुष्परिणाम है, जो हमारा इकलौता लड़का बिना किसी बीमारीके देखते-देखते मर गया। उसके धैर्यका बाँध टूट गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी, सिर धुन-धुनकर अपनी छाती पीटने लगी। सारा गाँव आ गया और किसीने दलवीरखाँको भी जाकर खबर कर दी, जिससे वह भी भागा हुआ आया और रोने-चिल्लाने लगा। जब उसकी स्त्रीने अपनी पतिको आते देखा, तब वह और भी जोर-जोरसे चिल्लाने लगी और उसने सबके सामने शर्म छोड़कर अपने पापी पतिकी छातीमें हाथ मारकर उसकी काली करतूतोंका भंडाफोड़ करना प्रारम्भ कर दिया। वह सबके सामने रोती हुई बोली कि 'मेरे इकलौते बेटेको और किसीने नहीं मारा है, यह सामने खड़ा इसका पापी बाप ही उसकी मौतका जिम्मेवार है। इस पापी बापने ही अपने इकलौते बेटेको मौतके घाट उतारा है। यही बेटेका हत्यारा है। इस पापीसे जब पीपलने रातमें स्वप्न देकर अपने प्राणोंकी इससे भीख माँग ली थी और इसे सौ रुपये तथा उसके सारे मुनाफेके रुपयेके एवजमें सोनेकी सलाख दे दी थी, फिर भी इस पापीको सब्र नहीं हुआ और यह हत्यारा लोभके वशीभूत हो कुल्हाड़ी लेकर पीपलको काटने जा चढ़ा। जब उसमेंसे

खूनकी धार निकली, जैसी कभी आजतक नहीं देखी गयी थी, तब भी यह बाज नहीं आया, नहीं माना और आखिर अपने इकलौते बेटेको मौतके घाट उतारकर ही इसने दम लिया। हाय पापी! तेरा नाश हो जाय, तूने सारे घरको बरबाद कर दिया।'

अब तो सारा गाँव इस बिलकुल सत्य घटनाको सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। सभी लोग दाँतों-तले अँगुली दबाने लगे और 'हिन्दुओंके शास्त्रोंकी बातें गप नहीं हैं, वरं अक्षर-अक्षर सत्य हैं', यह कहने लगे। हिंदूलोग जो हरे वृक्षमें जीव बताते हैं और हरे वृक्षोंको काटना घोर पाप मानते हैं तथा वृक्षोंमें भी हमारी भाँति सुख-दुःखका अनुभव होता है, यह बताते हैं, यह सत्य है। वे मानते हैं—पीपल तो साक्षात् देवता है, इसके पूजनसे बड़े-बड़े कार्य सिद्ध होते हैं और इसके अपमानसे तथा इसके शापसे महान् हानि होती है। इसको सभी हिंदू-मुसलमान एक स्वरमें स्वीकार करने लगे और सत्य मानने लगे। सारा गाँव दलवीरखाँको धिक्कारने लगा और वह भी फूट-फूटकर और दहाड़ मारकर रोने लगा। उसने रोते-रोते कहा—'सचमुच मैं ही अपने बेटेका हत्यारा हूँ। यदि मैं लोभके वश न होकर पीपलकी बात मान लेता, पीपलके साथ विश्वासघात नहीं करता तो मेरी आँखोंका तारा, प्राणप्यारा इकलौता बेटा मेरे हाथसे नहीं छिनता। मेरा घर बरबाद नहीं होता और मेरा बुढ़ापा नहीं बिगड़ता। खुदाके यहाँ इंसाफ है, मैंने हकीकतमें बड़ा भारी गुनाह किया था, जो हरे पीपलको काटा और उसके साथ विश्वासघात किया। उसीका नतीजा मुझे खुदाने दिया। मैं अबसे कभी भूलकर भी हरे पीपलको नहीं काटूँगा। यह प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।'

बादमें उसने कभी हरा वृक्ष नहीं काटा। यह बिलकुल सत्य घटना क्या यह सिद्ध नहीं करती कि मानवको वृक्षोंके साथ भी मानवोचित व्यवहार करना चाहिये।—भक्त रामशरणदास

मनन करने योग्य

भगवान् अपने भक्तका ध्यान करते हैं

एक बार युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और



तो बड़े आश्चर्यकी बात है! माधव! आपके रोंगटे खड़े हो गये हैं, शरीर जरा भी हिलता नहीं, बुद्धि तथा मन भी स्थिर है। आपका यह विग्रह काठ, दीवार और पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो रहा है, हिल-डुल नहीं रहा है। जहाँ हवा नहीं है, उस स्थानमें जैसे दीपकी लौ काँपती नहीं, एकतार जलती रहती है, उसी तरह आप भी स्थिर हैं, मानो पाषाणकी मूर्ति हो। यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ और यह मुझसे छिपानेकी बात न हो, तो आप मेरे सन्देशको दूर कीजिये। मैं आपकी शरणमें आकर बारंबार याचना करता हूँ। पुरुषोत्तम! आप ही इस जगत्को बनाने और बिगाड़नेवाले हैं, आप ही क्षर और अक्षर पुरुष हैं, आपका न आदि है न अन्त। आप सबके आदि कारण हैं। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और माथा टेककर आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ; आप मुझे इस ध्यानका रहस्य बता दीजिये।

हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने देखा भगवान् रत्नों तथा सुवर्णसे भूषित एक बड़े पलंगपर बैठे हुए हैं, उनकी श्यामसुन्दर छवि नीलमेघके समान सुशोभित हो रही है, शरीरसे तेज बरस रहा है और उनके अंग-अंगमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे हैं। उनका पीताम्बरधारी श्याम विग्रह स्वर्णजटित नीलमके समान जान पड़ता है। वक्षः-स्थलपर कौस्तुभमणि चमक रही है। इस मनोहर झाँकीकी तीनों लोकोंमें कहीं भी उपमा नहीं है। दर्शनके पश्चात् भगवान् के निकट पहुँचकर राजा युधिष्ठिर मुसकराते हुए बोले—‘भगवन्! आपहीकी कृपासे हमने राज्य पाया है, आपहीकी दयासे हम विजयी हुए और धर्मसे भ्रष्ट नहीं होने पाये।’

इस प्रकार राजाने कई बातें कहीं, पर भगवान् ने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उस समय वे ध्यानमग्न हो रहे थे। उनको इस स्थितिमें देखकर युधिष्ठिरने कहा—‘भगवन्! यह क्या, आप किसीका ध्यान कर रहे हैं? यह

युधिष्ठिरकी प्रार्थना सुनकर मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करके भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराते हुए बोले—‘भैया! बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मजी इस समय मेरा ध्यान कर रहे हैं, इसीलिये मेरा भी मन उनमें लग गया है। जिन्होंने तेईस दिनतक परशुरामजीके साथ युद्ध किया तो भी उनसे परास्त न हो सके, वे ही भीष्मजी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको एकाग्रकर बुद्धिके द्वारा मनको भी अपने अधीन करके मेरी शरणमें आ गये थे। इसीलिये मेरा भी मन उनमें लग गया। भगवती गंगाने जिन्हें विधिवत् अपने गर्भमें धारण किया, जिन्होंने महर्षि वसिष्ठजीसे शिक्षा पायी, जो सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों तथा अंगोंसहित चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान जिनकी दृष्टिके सामने हैं, उन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मजीके पास इस समय मैं मन-ही-मन पहुँच गया था।’ [महाभारत, शान्तिपर्व]

कल्याणका आगामी १४वें वर्ष (सन् २०२० ई०)-का विशेषाङ्क 'बोधकथा-अङ्क'

अकारणकरुणावरुणालय कृपासिन्धु परमात्मप्रभु भगवान् श्रीसाम्बसदाशिवका यह परम अनुग्रह है कि इस बारके विशेषाङ्कके रूपमें 'बोधकथा-अङ्क' प्रकाशित करनेका विचार बना है।

आत्मकल्याणके संसाधनोंमें बोधकथाओंके परिशीलनका अन्यतम स्थान है। कलेवरमें अत्यन्त लघु होनेसे इन कथाओंको पढ़नेके साथ ही मानसपटलपर एक विलक्षण प्रभाव होने लगता है। बोधकथाएँ हमें सत्परामर्श प्रदान करती हैं। मित्रसम्मित होनेसे कथाकी शैली हमें प्रेरणा प्रदान करती है। बोधकथाएँ 'ऐसा करो-ऐसा न करो'—इस प्रकारसे आज्ञा नहीं देती, बल्कि एक सच्चे हितैषी मित्रकी भाँति 'ऐसा करना चाहिये-ऐसा नहीं करना चाहिये'—यह बताकर हमें कर्तव्याकर्तव्यका सहज ही ज्ञान करा देती हैं। दूसरी बात यह है कि इनकी शैली सरल एवं रोचक होती है, तीसरी बात यह कि इनका आयाम स्वल्प होनेसे ये थोड़े ही समयमें महान् लाभकी प्राप्ति करा देती हैं, इसीलिये बोधकथा-साहित्यकी इतनी व्यापकता है।

बोधका तात्पर्य है, भलीभाँति जानना और समझना। ऐसी कथा, ऐसी घटना, ऐसा आख्यान, ऐसा प्रसंग, ऐसा वृत्तान्त, जो हमें उचित-अनुचितका ज्ञान कराकर हमारी सुषुप्त दैवी-सम्पदाको जगा दे और हमें सन्मार्गमें प्रेरित करे, बोधकथाकी परिसीमामें अन्तर्हित हैं। ऐसे प्रेरक-प्रसंग जो हमें अच्छे काममें, भलाईके काममें लगा सकें, मानवताके कल्याणमें लगा सकें, आत्मकल्याणमें प्रवृत्त कर सकें और प्रभुके समीप ले जायँ, बोधकथाके अन्तर्गत समाहित हैं।

ये प्रेरक-प्रसंग हमें जीवनदान देते हैं, हमारी जीवन-शैली बदल देते हैं, असत् मार्गसे सन्मार्गकी ओर प्रेरित करते हैं और हमारे अन्तःकरणको निर्मल तथा उदात्त बनाते हैं। साथ ही संकीर्णतासे ऊपर उठाकर हृदयकी विशालताको प्रस्फुटित करते हैं। इसी कारण इन बोधकथाओंका इतना माहात्म्य है। सरस एवं सरल होनेसे ये सहज बोधगम्य होती हैं। अल्पसमयमें ही दीर्घकालीन प्रभाव डालनेवाली होती हैं और सूत्ररूपमें रहकर भावगाम्भीर्य प्रदान करती हैं।

ऐसी बोधकथाएँ हमें मानवताका पाठ पढ़ाती हैं, सच्चे मानव बननेमें सहयोग प्रदान करती हैं, मानवीय संवेदनाको जगाती हैं, प्रेमका सन्देश देती हैं, भाईचारेकी सीख देती हैं, परस्पर सौजन्य एवं उदारताका अनुभाव प्रदान करती हैं और सच्ची सुख-शान्तिके विस्तारमें सहायक होती हैं, वर्तमानमें ऐसी बोधकथाओंके तात्पर्यको अपने जीवनमें आचरित करनेसे समाजमें प्रेम और अहिंसाका परिवेश बन सकता है। परस्पर राष्ट्रोंमें एक-दूसरेके प्रति मैत्रीभाव स्थापित हो सकता है। इस दृष्टिसे इन बोधकथाओंका बड़ा ही महत्त्व है।

इस विशेषाङ्कमें ऐसी ही बोधकथाओं, प्रेरक-प्रसंगों एवं वृत्तान्तोंके समावेश और संयोजनका विचार है, ताकि सभी वर्गके पाठक महानुभाव उनसे लाभ उठा सकें, प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

हम लेखक महानुभावों तथा संत-महात्माओंसे प्रार्थना करते हैं कि इस महनीय कार्यमें वे अपनी अमूल्य सामग्री प्रेषितकर हमें सहयोग प्रदान करनेकी कृपा करें। वैसे तो यहाँ अपने विभागमें ही अधिकांश सामग्री तैयार की जा रही है, तथापि एक विषय-सूची भी साथमें प्रेषित है, जो महानुभाव अपनी सामग्री भेजना

चाहें, उन्हें चाहिये कि वे ३१ जुलाई २०१९ तक यहाँ सामग्री उपलब्ध करा दें। अत्यन्त रोचक शैलीमें उपनिबद्ध उत्तम प्रस्तुतिको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जा सकेगी।

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

विषय-सूची

- १- बोधकथाका तात्पर्यार्थ।
- २- बोधकथाओंकी महनीयता एवं उपयोगिता।
- ३- बोधकथाके विविध आयाम।
- ४- कथा-साहित्यकी व्यापकता।
- ५- बोधकथाओंकी प्रासंगिकता।
- ६- वेदोंमें उपलब्ध अनुकरणीय प्रेरक-प्रसंग।
- ७- उपनिषदोंकी बोधकथाएँ।
- ८- पुराणोंके प्रेरणादायी आख्यान।
- ९- श्रीमद्भागवतके प्रेरक-प्रसंग।
- १०- वाल्मीकीय रामायणके अनुकरणीय दृष्टान्त।
- ११- महाभारतकी प्रेरक बोधकथाएँ।
- १२- श्रीमद्भगवद्गीताके परिप्रेक्ष्यमें बोधकथाका रहस्य।
- १३- संत-साहित्यमें प्रेरक-प्रसंग।
- १४- ऋषि-महर्षियों एवं संतोंके प्रेरणाप्रद वृत्तान्त।
- १५- बोधपरक दन्तकथाएँ।
- १६- संस्कृत वाङ्मयका कथा-साहित्य।
- १७- कथासरित्सागरमें उपलब्ध प्रेरक-प्रसंग।
- १८- बौद्धसाहित्यकी बोधपरक जातककथाएँ एवं धेरी कथाएँ।
- १९- संतोंके बोधपरक जीवन-प्रसंग।
- २०- बोधकथाओंका आकर ग्रन्थ—श्रीरामचरितमानस।
- २१- विविध धर्म एवं सम्प्रदायोंमें उपलब्ध प्रेरणाप्रद कथा-साहित्य।
- २२- आदर्श मानवताके प्रेरक आख्यान।
- २३- आदर्श माता-पिता एवं पुत्रोंके दृष्टान्त।
- २४- आदर्श गुरु-शिष्यके प्रेरक-प्रसंग।
- २५- दाम्पत्य-जीवनके आदर्श चरित।
- २६- ईमानदारी, परोपकार, न्याय एवं सदाचारसम्बन्धी आदर्श बोध-प्रकरण।
- २७- धर्माचरणके प्रेरणाप्रद आख्यान।
- २८- शास्त्रनिष्ठाके आदर्श प्रसंग।
- २९- आदर्श समाजसेवाकी बोधकथाएँ।
- ३०- राष्ट्रधर्मके प्रेरक-प्रसंग।
- ३१- गोभक्तोंके अनुकरणीय आदर्श-चरित।
- ३२- आदर्श बालक-बालिकाओंके प्रेरक-प्रसंग।
- ३३- मित्र-धर्मकी आदर्श कथाएँ।
- ३४- आदर्श भगवद्भक्तोंकी प्रेरणाप्रद कथाएँ।
- ३५- बोधकथाका अध्यात्मदर्शन।
- ३६- बोधकथामें निहित तत्त्वके ज्ञानसे प्रभुका सामीप्य।
- ३७- बोधकथाका रहस्य—अन्तःकरणमें दैवीसम्पदाका आधान।
- ३८- बोधकथाका उपदेश—विश्वबन्धुत्व एवं आत्मकल्याण।
- ३९- जैनसाहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ।
- ४०- लोकसाहित्यमें प्राप्त बोधकथाएँ।
- ४१- विश्वसाहित्यकी प्रेरक बोधकथाएँ।

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें एवं स्टेशन-स्टाल

निम्नलिखित गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालों पर ‘कल्याण’ का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।

इन्दौर-482001	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग	Mob. 9630111144
साँची-249304	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम	Mob. 6397500736, 9837775919
काठक-753009	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	Mob. 8093091800, 9338091800
कानपुर-203001	24/55, बिरहाना रोड	Mob. 8299309991, 9839922098
कोयम्बटूर-641018	गीताप्रेस मेशन, 8/1 एम, रसकोर्स	Mob. 9943112202, 7667662451
कोलकाता-700007	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड	Mob. 9831004222, 9883139686
गोरखपुर-273005	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस	Mob. 7985282936, 9984889884
चेन्नई-600010	इलेक्ट्रो हाउस No. 23 रामनाथन स्ट्रीट किलपौक	Mob. 7200050708
जलगाँव-425001	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	Mob. 9422281291, 7020118397
दिल्ली-110006	2609, नयी सड़क	Mob. 7289802606, 9999732072
नागपुर-440002	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड	Mob. 9420410735, 8830154589
पटना-800004	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	Mob. 9771787992, 8210494381
बेंगलुरु-560027	7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड	Mob. 8310731545, 9901449957
भीलवाड़ा-311001	जी 7, आकार टावर, सी ब्लॉक, गान्धीनगर	Mob. 9414114291, 9928527747
मुम्बई-400002	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	Mob. 9374047258, 9768954885
राँची-834001	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	Mob. 7004458358, 9504054449
रायपुर-492009	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी नाका चौक (छत्तीसगढ़)	Mob. 9329326200, 7879845886
वाराणसी-221001	59/9, नीचीबाग	Mob. 9839900745, 9140256821
सूरत-395001	2016, वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड	Mob. 9374047258, 9723397258
हरिद्वार-249401	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	Mob. 9760275146, 9675721305
हैदराबाद-500095	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	Mob. 9652975723, 9573650611

दिल्ली [नं० 5-6] 9868418958; नयी दिल्ली [नं० 14-15] 9015140474; हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली]; [नं० 4-5] 9654523349; कोटा [राजस्थान] [नं० 1] 9314141448; बीकानेर [नं० 1] 9571460742; मेड़तारोड [नं० 1] 9660512015; गोरखपुर [नं० 1] 9415691921; गोण्डा [नं० 1] 7348635765; लखनऊ [नं० 1] [एन० ई० रेलवे] 9889452950; कानपुर [नं० 1] 9450661650; वाराणसी [नं० 4-5] 9451943495; मुगलसराय [नं० 3-4] 8858585302; इलाहाबाद [नं० 4-6] 7318567660; हरिद्वार [नं० 1] 9897329352; मथुरा [नं० 2-3] 8057312276; झाँसी [नं० 1] 6386935234; पटना (मुख्य प्रवेशद्वार) 9973414044; राँची [नं० 1] 8207586311; धनबाद [नं० 2-3] 9304921119; मुजफ्फरपुर [नं० 1] 7654203765; समस्तीपुर [नं० 2] 9097332335; छपरा [नं० 1] 7301213534; सीवान [नं० 1] 7004301320; हावड़ा [नं० 5] 9073540111; हावड़ा [नं० 18] 8926040914; कोलकाता (चितपुर) [नं० 1] 9674678284; दमदम [नं० 2-3] 9433661184; भोपाल [नं० 1] 9648351638; सियालदा मेन [नं० 8] 9831259985; आसनसोल [नं० 5] 8250756983; कटक [नं० 1] 9438081976; ग्वालियर [नं० 1] 8430611489; भुवनेश्वर [नं० 1] 9937466453; अहमदाबाद [नं० 2-3] 9327042054; राजकोट [नं० 1] 9714661427; वडोदरा [नं० 4-5] 9998804811; इन्दौर [नं० 5] 9826068366; जबलपुर [नं० 6] 9993714615; औरंगाबाद [महाराष्ट्र] [नं० 1] 9423028069; गोंदिया [महाराष्ट्र] [नं० 1] 9921588495; सिकन्दराबाद [आ० प्र०] [नं० 1] 9849276712; विजयवाड़ा [नं० 6] 8297803628; गुवाहाटी [नं० 1] 9954724003; खड़गपुर [नं० 1-2] 9434032236; रायपुर [छत्तीसगढ़] [नं० 1] 9407624725; बिलासपुर [नं० 1] 7389482312; रायगढ़ [नं० 1] 9407624725; बेंगलुरु [नं० 1] 8147321057; यशवन्तपुर [नं० 6] 8050217615; हुबली [नं० 1-2] 7676486214; श्री सत्यसाई प्रशान्ति निलयम् [दक्षिण-मध्य रेलवे] [नं० 1] 9849051793

उपर्युक्त सभी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालों पर गीताप्रेस, गोरखपुरकी प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध रहती हैं।

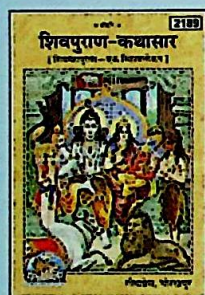
खुल गया है— जोधपुर (राजस्थान) रेलवे स्टेशन प्लेट फार्म नं० २/३ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टाल 7987452805

शीघ्र प्रकाशनकी प्रक्रियामें

श्रीशिवमहापुराण-सटीक (सचित्र, मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित)—

महापुराणोंके क्रममें श्रीशिवमहापुराणका विशेष माहात्म्य है। वर्तमानमें उपलब्ध श्रीशिवमहापुराणमें कुल सात संहिताएँ हैं—विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता एवं वायवीयसंहिता। इनमें भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानव-जीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्यरूपसे इसमें भगवान् शिवके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगों-उपलिंगोंके आख्यान, शिवरात्रि, पाशुपत आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंके रोचक आख्यान, अर्धनारीश्वरस्तोत्र एवं पञ्चाक्षर मंत्र आदिका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। यह उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा सर्वसाधारण आस्तिकजनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है। इसे दो खण्डोंमें प्रकाशित किया जा रहा है।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



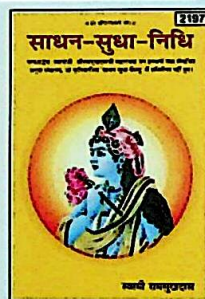
मूल्य ₹२२०



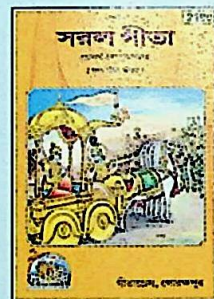
मूल्य ₹१९५



मूल्य ₹१९०



मूल्य ₹१६०



मूल्य ₹३५

उपर्युक्त पुस्तकोंका परिचय कल्याण माह अप्रैल २०१९ के कवर पृष्ठ ३ पर देखें।

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य पढ़ें और पढ़ावें

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ			1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ पुस्तकाकार	१५
1690	बालकके गुण ग्रन्थाकार	३५	1448	वीर बालिकाएँ " "	१५
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें " "	२५	सचित्र ग्रन्थाकार कहानियाँ		
1692	बालककी दिनचर्या " "	२५	2079	शिक्षाप्रद चरितावली	२५
1693	बालकोंकी सीख " "	२५	2080	शिक्षाप्रद बाल-कहानियाँ	२५
1694	बालकके आचरण " "	२५	2081	कल्याणकारी बाल-कहानियाँ	२५
1691	बालकोंकी बातें पुस्तकाकार	२०	2067	आदर्श बाल-कहानियाँ	२५
1437	वीर बालक " "	२०	2071	प्रेरक बाल-कहानियाँ	२५
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक " "	१५	2070	बालकोपयोगी कहानियाँ	२५
1450	सच्चे और ईमानदार बालक " "	१५	2072	प्राचीन बाल-कहानियाँ	२५
			2068	आदर्श बाल कथाएँ	२५

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कूरियरसे / डाकसे मँगवायें।